पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

JUNE 2026

अंक - 06

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: हिन्दुत्व की समस्या या समाधान 3

गुजरात का सबक 6

494

MARGDARSHAK

प्रकाशन की तिथि - 16-06-2026 पोस्ट की तिथि - 30-06-2026

सिंहावलोकन

08 **पत्रोत्तर**

10 **प्रश्नोत्तर**

12 **ज्ञान तत्व 188 नवम्बर 2009 .**
लागा चुनरी में दाग, छुपाऊँ कैसे?

15 **जूम चर्चा कार्यक्रम**

17 **संस्थागत समाचार**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल
9617079344
mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघः हिन्दुत्व की समस्या या समाधान

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

दवा और टॉनिक के अलग-अलग परिणाम भी होते हैं तथा उपयोग भी। दवा किसी बीमारी की स्थिति में अल्पकाल के लिए उपयोग की जाती है जबकि टॉनिक स्वास्थ्यवर्धक होता है और लम्बे समय तक प्रयोग किया जा सकता है। टॉनिक के दुष्परिणाम नहीं होते जबकि दवा के दुष्परिणाम भी संभव हैं। दवा किसी अनुभवी डॉक्टर की सलाह से ही ली जाती है जबकि टॉनिक कभी भी उपयोग किया जा सकता है। यदि दवा निश्चित बीमारी पर नियंत्रण के बाद भी उपयोग की जाए तो गंभीर दुष्परिणाम भी हो सकते हैं। बताया जाता है कि सीमित मात्रा में शराब दवा का काम भी करती है, किन्तु आदत पड़ने के बाद बहुत गंभीर नुकसान पहुँचाती है। इसलिए टॉनिक को दवा और दवा को टॉनिक के समान उपयोग करना हानिकारक होता है। भारतीय संस्कृति विचारप्रधान, इस्लामिक संस्कृति संगठन प्रधान, पाश्चात्य संस्कृति धन प्रधान और साम्यवादी संस्कृति उद्दंडता प्रधान मानी जाती है। संगठन में शक्ति होती है और धन में आकर्षण होता है। इसलिए भारतीय संस्कृति लम्बे समय तक इस्लामिक संस्कृति और पाश्चात्य विचारधारा की गुलाम रही। स्वतंत्रता के बाद जब स्वतंत्र भी हुई तो साम्यवादी संस्कृति ने उसको जकड़ना शुरू कर दिया। ऐसे संकटकाल में संघ परिवार ने अपनी हिन्दुत्व की मूल विचारधारा से हटकर इन तीनों संस्कृतियों का उनके ही तरीकों से मुकाबला किया। उनमें भी इस्लामिक संस्कृति ज्यादा संगठित थी और संघ परिवार ने उसे ही अपना प्रथम शत्रु घोषित किया। स्पष्ट है कि संघ ने इस्लामिक विस्तारवाद का भरपूर विरोध किया जो आज भी जारी है। संघ ने हिन्दुओं की घटती संख्या की निरंतर चिंता की। सांस्कृतिक आधार पर भी संघ परम्परागत मान्यताओं के साथ लगातार दृढ़ रहा जबकि पाश्चात्य जगत और साम्यवाद परम्पराओं को किसी भी परिस्थिति में तोड़कर उसे आधुनिक वातावरण में बदलने का प्रयास करते रहे। परिवार व्यवस्था में भी संघ परम्पराओं के साथ मजबूती से डटा रहा जबकि स्वतंत्रता के बाद अन्य सबने मिलकर परिवारों को छिन्न-भिन्न करने के लिए आधुनिकता का कुचक्र रचा। राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे पर भी संघ पूरी ताकत से सक्रिय रहा जबकि इस्लाम और साम्यवाद पूरी तरह राष्ट्रीय सुरक्षा को कमजोर करने का प्रयास करते रहे। नैतिकता और चरित्र के मामले में भी संघ की अपनी एक अलग पहचान बनी हुई है। आज भी हम देख रहे हैं कि लव जिहाद, धर्म परिवर्तन या जनसंख्या वृद्धि को आधार बनाकर मुस्लिम-साम्यवादी गठजोड़ का मुकाबला करने में संघ निरंतर सक्रिय है। जेएनयू संस्कृति से संघ निरंतर टकरा रहा है। यहाँ तक कि कई प्रदेशों में संघ के कार्यकर्ता प्रताड़ित भी किए जाते हैं किन्तु संघ अपने हिन्दुओं की सुरक्षा के कार्य में कोई कमजोरी नहीं दिखाता। अपने विस्तार के लिए संघ प्रेम, सेवा, सद्भाव का भी सहारा लेता रहा है। यदि कोई आकस्मिक दुर्घटना हो जाती है तो संघ बिना भेदभाव के भी सेवा करने को आगे आ जाता है। इस तरह कहा जा सकता है कि हिन्दुत्व को गंभीर रूप से प्रभावित करने वाली बीमारियों से टकराने में संघ अकेला सबसे आगे रहा है।

पिछले कुछ समय से ऐसा दिख रहा है कि संघ हिन्दू समाज में दवा को टॉनिक के रूप में उपयोग करने की आदत डाल रहा है। सैकड़ों वर्ष पूर्व सिख धर्म का उदय भी हिन्दुत्व की सुरक्षा के लिए दवा के रूप में हुआ था, ठीक उसी तरह जिस तरह वर्तमान समय में संघ का हो रहा है, लेकिन कालांतर में जिस तरह सिख धर्म आंशिक रूप से प्रतिद्वन्द्वी बन रहा है, ऐसा अनुभव हमें याद रखना चाहिए। मोदी के पूर्व भारत में हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखा गया। स्पष्ट है कि भारत में यदि मुसलमानों की संख्या एक तिहाई भी हो जाती तो भारत में हिन्दुओं की स्थिति पाकिस्तान या कश्मीर सरीखी कर दी जाती। किन्तु हिन्दुत्व गुण प्रधान संस्कृति है, संगठन प्रधान नहीं। मजबूत होने की शुरुआत होते ही मोदी से हटकर हिन्दू राष्ट्र का नारा देना हिन्दुत्व के विरुद्ध है। हिन्दुत्व की सुरक्षा के लिए तो विशेष अभियान चलाया जा सकता है किन्तु इस्लामिक तरीके से अपने विस्तार के विषय में सोचना हिन्दुत्व के विरुद्ध है। परिवार व्यवस्था को परम्परागत या आधुनिक की अपेक्षा लोकतांत्रिक दिशा में ले जाना चाहिए। राष्ट्र भावना को भी कभी राष्ट्रवाद की दिशा में नहीं बढ़ना चाहिए क्योंकि हिन्दू समाज को राष्ट्र या धर्म से ऊपर मानता है, जो अन्य लोग नहीं मानते। अन्य धर्मावलम्बियों को अपने साथ जोड़ने की घर वापसी भी उचित नहीं है। क्योंकि हिन्दू एक संस्कृति है, विभिन्न संप्रदायों का मंच है, कोई विशेष पूजा-पद्धति नहीं। इससे अच्छा तो यह होता कि धर्म परिवर्तन कराने पर कानून के द्वारा रोक लगाने की मांग की जाती। मुस्लिम आक्रामकता को कमजोर करने के नाम पर मंदिर, गाय, गंगा जैसे भावनात्मक मुद्दों को किनारे करके समान नागरिक संहिता को अधिक महत्व दिया जाता। संघ भी समान नागरिक संहिता पर जोर देता है लेकिन चाहता है समान आचार संहिता, जो बहुत घातक है। भारत एक सौ चालीस करोड़ व्यक्तियों का देश हो और सबको समान अधिकार हों, यह समान नागरिक संहिता होती है, लेकिन संघ इसके विपरीत चाहता है। संघ धर्म

और विज्ञान के बीच भी दूरी बढ़ाना चाहता है, जो ठीक नहीं। धर्म और विज्ञान के बीच समन्वय होना चाहिए। संघ वामपंथ के मुकाबले दक्षिणपंथ की दिशा में चलना चाहता है जबकि उसे अब उत्तरपंथ की दिशा में चलना चाहिए अर्थात् संघ को परम्परा और आधुनिकता के बीच यथार्थ का सहारा लेना चाहिए। संघ को भावनाओं की अपेक्षा विचारों को अधिक महत्व देना चाहिए। संघ के प्रारंभ के बाद के सौ वर्षों में भारत वैचारिक धरातल पर निरंतर पिछड़ रहा है। विवेकानन्द के बाद भारत में कोई गंभीर विचारक आगे नहीं आ सका और इस संबंध में संघ ने कभी कुछ नहीं सोचा। संख्या विस्तार की अपेक्षा गुण प्रधानता अधिक महत्वपूर्ण होती है। साम्यवाद ने गुण प्रधानता को छोड़ दिया जिसके कारण वह समाप्ति की कगार पर है। इस्लाम ने भी संख्या विस्तार और संगठन को एकमात्र लक्ष्य बना लिया। स्पष्ट दिख रहा है कि यदि उसने बदलाव नहीं किया तो उसकी दुर्गति निश्चित है। उचित होगा कि हिन्दुत्व उस प्रकार की भूल न करे। लेकिन यह बात अभी साफ नहीं है कि संघ इस संबंध में कितना सतर्क है। हम अब भी यदि सुरक्षात्मक मार्ग पर चलते रहे तो विश्व व्यवस्था में हमारी लाखों वर्षों की पहचान खतरे में पड़ जाएगी।

हिन्दुत्व की सुरक्षा के लिए हमने दवा के रूप में संघ का सहारा लिया, इसके लिए संघ बधाई का पात्र है। वर्तमान समय में भी भारत में इस्लाम की ओर से ऐसा कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिला है कि उन्होंने हार मान ली हो। मोदी जी के नेतृत्व में उन्हें सुधार या समापन में से एक को चुनना होगा और भारत का मुसलमान गंभीरतापूर्वक इस विषय पर विचार भी कर रहा है। किन्तु यह उचित नहीं होगा कि हम भविष्य में भी दवा को टॉनिक के रूप में उपयोग करने की आदत डाल लें। संघ परिस्थिति अनुसार दवा है और स्वस्थ होने के बाद भी उसका उपयोग स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह है। हिन्दुओं को इतनी सतर्कता अवश्य रखनी चाहिए। मेरी अपने मित्रों को सलाह है कि वे हिन्दुत्व की सुरक्षा के प्रयत्न में संघ का निरंतर समर्थन और सहयोग करें। किन्तु यदि संघ इससे आगे बढ़कर अन्य संस्कृतियों से बदला लेना चाहता है तो हम ऐसे प्रयत्नों का भरपूर विरोध करें। अब तक नरेन्द्र मोदी की दिशा ठीक दिख रही है और नरेन्द्र मोदी हिन्दुत्व विरोधी अथवा हिन्दुत्व के नाम पर अपना एजेंडा थोपने वाले संघ परिवार के बीच यथार्थवाद की लाइन पर चलते दिख रहे हैं और किसी भी पक्ष के दबाव में नहीं आ रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम भावनाओं से ऊपर उठकर हर मामले में हर संगठन के कार्यों की समीक्षा करके ही अपनी सहभागिता की आदत डालें। पिछले सात-आठ वर्षों से संघ परिवार की कट्टरवादी नीतियों में भी पर्याप्त बदलाव दिख रहा है। प्रवीण तोगड़िया सरीखे कट्टरवादी बाहर किए जा रहे हैं। राष्ट्रीय मुस्लिम मंच बनाकर धार्मिक तालमेल की तरफ भी अच्छी सक्रियता है। मोहन भागवत और नरेन्द्र मोदी मिलकर समान नागरिक संहिता को हिन्दू राष्ट्र की जगह अधिक महत्वपूर्ण मान रहे हैं। इस तरह यह बात स्पष्ट हो रही है कि संघ ठीक दिशा में चल रहा है। जातिवाद और सांप्रदायिकता के मामले में भी संघ की नीतियाँ बिल्कुल ठीक हैं। इसलिए यह उचित होगा कि हम सब साथी संघ के साथ मिलकर काम कर सकते हैं। फिर भी संघ का पुराना इतिहास कट्टरवाद का रहा है और मोहन भागवत के जाने के बाद क्या दिशा होगी, यह स्पष्ट नहीं है, इसलिए हम संघ के साथ सहभागी की भूमिका में न आकर सहयोगी की भूमिका तक रहना चाहते हैं। हम यह नहीं चाहते कि वर्तमान नरेन्द्र मोदी और मोहन भागवत के नेतृत्व में अब सुरक्षात्मक हिन्दुत्व की कोई आवश्यकता बची है। हिन्दुत्व की सुरक्षा का कार्य संतोषजनक ढंग से हो रहा है। अब हमें संघ, गायत्री परिवार और आर्य समाज के साथ तालमेल बिठाकर हिन्दुत्व के विस्तार की दिशा में अधिक सोचना चाहिए। अब संगठित हिन्दुत्व नहीं, अब गुण प्रधान हिन्दुत्व अधिक महत्वपूर्ण है।

संघ परिवार, आर्य समाज और सर्वोदय परिवार की समीक्षा

स्वतंत्रता पूर्व स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज, श्री हेडगेवार तथा महात्मा गांधी लगातार भारत की आंतरिक, राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था के सुधार में सक्रिय रहे। तीनों ही संगठनों में एक से बढ़कर एक त्यागी, तपस्वी लोग शामिल रहे, किन्तु तीनों संगठनों का कुछ मामलों में तालमेल नहीं हो सका। आर्य समाज मुख्य रूप से सामाजिक समस्याओं पर अधिक केन्द्रित रहा। आर्य समाज भावनाओं की अपेक्षा विचारों पर अधिक बल देता था। आर्य समाज परिस्थिति अनुसार अपनी कार्यप्रणाली में संशोधन भी करता था। यही कारण था कि आर्य समाज ने स्वतंत्रता संघर्ष में सामाजिक कार्यों की अपेक्षा गुलामी से मुक्ति आन्दोलन में अधिक बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। आर्य समाज के बहुत से लोग गांधी के मार्ग से भी जुड़े रहे, तो दूसरी ओर बहुत से लोग गांधी मार्ग से ठीक विपरीत क्रांतिकारियों के साथ भी जुड़े रहे। मार्ग भले ही भिन्न-भिन्न हों, किन्तु लक्ष्य दोनों का स्वतंत्रता में सहयोग था। हेडगेवार जी तथा उनके द्वारा स्थापित संघ हिन्दू सुरक्षा तक सीमित था। संघ के लोग इस्लाम को हिन्दू धर्म के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक मानते थे और यह भी सच था कि मुसलमान राजाओं का इतिहास ऐसा ही कलंकित रहा है। मुसलमानों की अपेक्षा संघ परिवार अंग्रेजी शासन को कम खराब मानता था और इसलिए संघ परिवार की एकमात्र सम्पूर्ण शक्ति इस्लाम के विरुद्ध हिन्दू संगठन तक केन्द्रित रही। महात्मा गांधी राष्ट्रीय गुलामी को सर्वाधिक खतरनाक मानते थे। यह अलग बात है कि स्वतंत्रता संघर्ष में महात्मा गांधी अहिंसक मार्ग पर चलने के लिए दृढ़ थे, तो

क्रांतिकारी अहिंसक मार्ग को असफल मानते थे। लेकिन लक्ष्य के प्रति दोनों के बीच कोई विरोधाभास नहीं था। महात्मा गांधी तथा क्रांतिकारी इस्लाम की अपेक्षा गुलामी को पहला शत्रु मानते थे, तो संघ परिवार इस्लाम को पहला शत्रु मानता था। आर्य समाज भी इस्लाम को पहला शत्रु मानना बंद करके गुलामी को पहला शत्रु मानने लगा था। यही कारण है कि आर्य समाज प्रारंभ में इस्लाम के पूरी तरह विरुद्ध होते हुए भी स्वतंत्रता संघर्ष के समय उस विरोध को प्राथमिकता नहीं दे रहा था। यही कारण था कि गांधी पूरी तरह हिन्दू धर्म के पक्षधर होते हुए भी स्वतंत्रता संघर्ष में इस्लाम को साथ लेकर चलना चाहते थे और संघ परिवार स्वतंत्रता भले ही देर से मिले या न भी मिले, किन्तु वह इस्लाम से किसी भी प्रकार के समझौते के विरुद्ध था। यही कारण है कि संघ के इक्का-दुक्का लोगों को छोड़कर अन्य किसी कार्यकर्ता की स्वतंत्रता संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रही। बल्कि कहीं-कहीं इस संघर्ष को विवादास्पद बनाने में भी सक्रियता देखी जा सकती है। स्वतंत्रता के बाद आर्य समाज ने यह मान लिया कि उसका काम पूरा हो गया और उसे अब पुनः अपने समाज सुधार के कार्य में लग जाना चाहिए और उसने पूरी तरह राजनीति से किनारा कर लिया। इसके ठीक विपरीत स्वतंत्रता के पूर्व संघ एक सांस्कृतिक संगठन तक सीमित था, किन्तु स्वतंत्रता मिलते ही वह पूरी तरह राजनीति में सक्रिय हो गया। स्वाभाविक था कि अधिकांश मुसलमान भारत के हिन्दुओं में अपना विश्वास खो चुके थे तथा संघ के लिए यह अच्छा अवसर था। यह अलग बात है कि संघ विचारों से प्रभावित कुछ अतिवादी हिन्दुओं ने गांधी हत्या जैसा भावनात्मक और मूर्खतापूर्ण कृत्य करके उसका खेल बिगाड़ दिया। गांधी हत्या के बाद सर्वोदय दो भागों में विभाजित हो गया। गांधी को मानने वालों का एक भाग राजनीति के माध्यम से व्यवस्था परिवर्तन में लग गया, जो बाद में अपनी अवस्था परिवर्तन में बदल गया, तो दूसरा सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन तक सीमित हो गया। दुनिया में साम्यवादी सबसे अधिक चालाक और बुद्धिवादी माने जाते हैं, तो दूसरी ओर संघ परिवार सबसे अधिक शरीफ, नासमझ और भावना प्रधान। सर्वोदय भी लगभग शरीफ, नासमझ और भावनाप्रधान ही माना जाता है। किन्तु गांधी हत्या ने सर्वोदय के मन में इतनी कटुता भर दी कि साम्यवादी और मुस्लिम संगठनों को सर्वोदय का साथ लेने में सुविधा हो गई। यदि हम सर्वोदय परिवार और संघ परिवार की तुलना करें तो दोनों में अनेक समानताओं के बाद भी दोनों में काफी असमानताएँ हैं। संघ एक संगठन का स्वरूप है जिसके नेता निर्णय करते हैं और कार्यकर्ता तदनुसार आचरण करते हैं। जबकि सर्वोदय का प्रत्येक कार्यकर्ता ही स्वयं में एक नेता है। इसमें न तो एक नेतृत्व है, न ही प्रतिबद्ध अनुकरणकर्ता। संघ में पूरी तरह अनुशासन है तो सर्वोदय में पूरी तरह स्वशासन। संघ का एक स्पष्ट लक्ष्य है हिन्दू तुष्टीकरण के माध्यम से भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका अदा करना। सर्वोदय दिशाहीन है। उसका कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं। कभी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन तो कभी स्वदेशी का नारा। कभी ग्राम स्वराज्य तो कभी साम्प्रदायिकता उन्मूलन। एक वर्ष के लिए भी इनके लक्ष्य टिकाऊ या स्पष्ट नहीं होते। संघ मुस्लिम संगठनों की क्रिया के विरुद्ध तीव्र, योजनाबद्ध तथा परिणाममूलक प्रतिक्रिया करता है। सर्वोदय संघ की प्रतिक्रिया के विरुद्ध लचर, अविचारित तथा शक्ति प्रदर्शन के लिए प्रतिक्रिया करता है। संघ अन्य संगठनों का उपयोग करना जानता है जबकि सर्वोदय किसी संगठन का उपयोग नहीं कर सकता, भले ही उसी का कोई उपयोग कर ले। संघ नेतृत्व पूरी तरह सतर्क, सक्रिय और चालाक है। सर्वोदय नेतृत्व सक्रिय तो है किन्तु ढीला-ढाला तथा शरीफ प्रवृत्ति का है। संघ का उद्देश्य सत्ता प्रधान है, और परिणाम सफलता है जबकि सर्वोदय का उद्देश्य जनहित का है किन्तु परिणाम शून्य है। मैंने दोनों संगठनों को निकट से देखा है। सर्वोदय की प्रत्येक चर्चा में गांधी हत्या की प्रतिक्रिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सर्वोदय गांधी हत्या के लिए तो संघ को अक्षम्य दोषी मानता है किन्तु भारत विभाजन में मुसलमानों की भूमिका अथवा सम्पूर्ण विश्व में अन्य धर्मावलम्बियों से निरंतर टकराव में मुसलमानों की भूमिका को भूल जाने योग्य दोष से अधिक नहीं मानता। संघ प्रत्यक्ष रूप से बलप्रयोग का समर्थक है। उसकी कथनी-करनी में फर्क नहीं। सर्वोदय प्रत्यक्ष रूप से अहिंसा की बात करता है किन्तु परोक्ष रूप से नक्सलवाद, मुस्लिम आतंकवाद तक का समर्थन करता है। कथनी और करनी में आसमान-जमीन का फर्क है।

मेरे विचार में सर्वोदय भटक रहा है। सन पचहत्तर में सर्वोदय ने इंदिरा गांधी की तानाशाही के विरुद्ध एक निर्णायक पहल की। किन्तु सर्वोदय से भूल हुई कि उसने उक्त पहल करने में संघ तथा साम्यवादियों को मिलाकर एक मंच बना दिया। संघ और साम्यवादी उतने ही कट्टर होते हैं जितने कि मुसलमान। ये व्यक्ति के रूप में तो कहीं भी रह सकते हैं किन्तु दल के रूप में ये पूरी तरह सतर्क और सक्रिय रहते हैं। सर्वोदय ने तानाशाही के विरुद्ध ऐतिहासिक संघर्ष का नेतृत्व किया किन्तु देश में कोई निर्णायक परिवर्तन नहीं आ सका। अब तो सर्वोदय लगभग चर्चा से भी बाहर हो रहा है। इस समापन काल में स्थिति यहाँ तक आ गई है कि सर्वोदय में ही सम्पत्ति और सत्ता की छीना-झपटी शुरू हो गई है। साम्यवाद के लगभग पतन और कांग्रेस के कमजोर होने के बाद सर्वोदय के सामने कोई अन्य मार्ग नहीं दिख रहा है जबकि संघ परिवार लगातार सशक्त हो रहा है तथा मुसलमानों की बढ़ती अविश्वसनीयता संघ परिवार को और शक्ति प्रदान कर रही है। आर्य समाज की एक स्पष्ट दिशा रही है किन्तु अग्निवेश द्वारा साम्यवाद के समर्थन से आर्य समाज को भी कमजोर

करने में बहुत सफलता मिली। यहाँ तक कि साम्यवाद, कांग्रेस तथा कुछ विश्वस्तरीय संगठनों के समर्थन से अग्निवेश जैसे चालाक व्यक्ति आर्य संस्कारों के विरुद्ध होते हुए भी आर्य समाज के प्रधान बन बैठे थे। पिछले दस वर्षों से स्थितियाँ बदली हैं। वर्तमान समय में अधिकांश भावना प्रधान लोगों से भारतीय राजनीति का पिंड छूट गया है। तीनों संगठन अर्थात् सर्वोदय, आर्य समाज और संघ, मोदी के सामने समझदारी में बौने सिद्ध हो रहे हैं। साम्यवाद तो स्वयं ही समाप्त हो रहा था। आर्य समाज का आंशिक स्वरूप परिवर्तन होकर कुछ गायत्री परिवार, कुछ बाबा रामदेव के रूप में बिखर गया। संघ परिवार लगातार शक्तिशाली हो रहा है। स्पष्ट दिखता है कि परिवारवाद, मुस्लिम साम्प्रदायिकता तथा आर्थिक कमजोरी से निपटते ही नरेन्द्र मोदी साम्प्रदायिकता से निपटने की अन्तिम पहल करेंगे। हो सकता है कि इस पहल की शुरुआत 2029 के आम चुनाव के बाद ही हो। किन्तु मुझे साफ दिखता है कि यह कार्य होगा अवश्य और ऐसी पहल का मुख्य निशाना संघ परिवार के वे बड़बोले लोग और वह नासमझ विचार होगा जिन्हें न हिन्दुत्व का ज्ञान है, न समाज की चिंता है, न विश्वसनीयता की चिंता है बल्कि उन्हें तो अपने मूर्खतापूर्ण विचारों को टीवी और अखबारों में प्रसारित होने देने की तक चिंता है। मैं भारत में संगठनात्मक हिन्दुत्व की तुलना में गुणात्मक हिन्दुत्व के होने का पक्षधर रहा हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि आर्य समाज तथा सर्वोदय भी वैचारिक तथा गुणात्मक हिन्दुत्व के समर्थन में अपनी पुरानी गलतियों की समीक्षा करेंगे।

गुजरात का सबक

भारतीय राजनीति में दो संगठन राजनीति से स्वयं को दूर कहते हुए भी पूरी तरह राजनीति में सक्रिय हैं। 1) सुन्नी मुसलमान 2) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। ये दोनों संगठन स्वयं को सांस्कृतिक संगठन कहते हैं। किन्तु दोनों का किसी संस्कृति से लेना-देना नहीं। दोनों ही संगठनों का उद्देश्य कुछ अलग ही है। मुसलमान राजनीति से अपना धार्मिक उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं तथा संघ धर्म से अपना राजनैतिक उद्देश्य पूरा करना चाहता है। मुसलमान अपने संगठित वोटों के आधार पर राजनैतिक दलों को अपने इशारे पर नचाता रहता है तथा संघ परिवार मुसलमानों का नाम लेकर अपना वोट बैंक मजबूत करता रहता है। इन दो संगठनों के अतिरिक्त एक तीसरा समूह भी है जिसे हम धर्मनिरपेक्ष कहते हैं। इस वर्ग में अधिकांश वामपंथी, प्रगतिशील साहित्यकार तथा गांधीवादी लोग शामिल हैं। इस तीसरे समूह को भारत के आम नागरिकों में तटस्थ या धर्मनिरपेक्ष माना गया किन्तु यह तीसरा वर्ग पूरे पचास वर्षों में कभी तटस्थ या धर्मनिरपेक्ष नहीं रहा। बल्कि यह वर्ग पूरी तरह हिन्दू साम्प्रदायिकता का विरोधी मात्र रहा। इस तीसरे वर्ग में अधिकांश लोग हिन्दू थे। इन सबकी मनोवृत्ति भी हिन्दू थी। हिन्दू संस्कार से ही धर्मनिरपेक्ष होता है और यदि वह विशेष रूप से भी धर्मनिरपेक्ष बनने का प्रयास करना शुरू कर दे तो यह निश्चित है कि वह वास्तव में धर्मनिरपेक्ष नहीं रहता, बल्कि दूसरे धर्म की ओर अधिक झुक जाता है। यही भारत के धर्मनिरपेक्षों के साथ भी हुआ। इन्हें भारत में समान नागरिक संहिता में भी साम्प्रदायिकता नजर आने लगी। धर्मनिरपेक्ष संविधान में भी अल्पसंख्यक की अवधारणा सम्मिलित करने की भूल भी इसी कारण संभव हुई। हिन्दुओं की सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये हिन्दू कोड बिल को भले ही लागू किया जाए किन्तु मुसलमानों की आन्तरिक बुराइयों में हस्तक्षेप उनके धर्म का उल्लंघन है। धर्मनिरपेक्षता के इस अतिवादी तथा एकपक्षीय सोच ने इन सब धर्मनिरपेक्षों को हिन्दू समाज में अविश्वसनीय बना दिया। गुजरात जैसे गांधी के राज्य में, जहाँ की अधिकांश आबादी हिन्दू होने के कारण धर्मनिरपेक्ष स्वभाव की है, उनकी धर्मनिरपेक्षता को भी साम्प्रदायिकता में बदलने में संघ परिवार सफल रहा और हमारे पूरे भारत के बड़े-बड़े नामी धर्मनिरपेक्ष अपनी सारी ताकत लगाकर भी उन्हें नहीं रोक सके। इसका कारण यह नहीं है कि इनके प्रयत्न कमजोर थे बल्कि इसका एकमात्र कारण था कि इनकी धर्मनिरपेक्षता अविश्वसनीय हो गई थी। मैंने गुजरात चुनावों के पूर्व माननीय ठाकुरदास जी बंग को पत्र लिखकर इस खतरे के प्रति सचेत किया था। अबोहर की संगीति में भी मैंने यह स्थिति स्पष्ट की थी। पटना में मंच पर कुलदीप नैयर, प्रभाष जोशी, मेधा पाटकर जैसे धुरंधरों के बीच मैंने कुछ न कहना उचित समझा। किन्तु मेरा मन किसी अप्रिय परिणाम की कल्पना कर रहा था। कांग्रेस पार्टी ने गुजरात में बहुत बुद्धिमानी का काम किया कि उसने साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को रोकने की भरसक कोशिश की। उसने बावेला जैसे कट्टर हिन्दू को नेता बनाया तथा मंदिरों से अपने कार्यक्रम शुरू किये। कांग्रेस ने भरसक कोशिश की कि चुनाव साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण न हो किन्तु मुसलमानों ने तथा धर्मनिरपेक्ष समर्थकों ने चुनाव में संघ परिवार का ऐसा विरोध किया कि कांग्रेस पार्टी के सारे प्रयत्न विफल हो गये। गंभीरता से सोचने की जरूरत है कि गोधरा ट्रेन में लगने वाली आग के लिये "अन्दर से आग लगाई गई" की बात चाहे जितनी भी सच रही हो किन्तु गुजरात का कोई हिन्दू इसे सच मानने को तैयार नहीं है। धर्मनिरपेक्षों के इस तथाकथित सच ने गुजरात के हिन्दुओं के मन में धर्मनिरपेक्षों को पूरी तरह अविश्वसनीय बना दिया। गुजरात के चुनावों में कांग्रेस के अतिरिक्त जिन लोगों ने भी कांग्रेस की सहायता की, उन सबके प्रयत्नों से कांग्रेस को भारी क्षति हुई है। गुजरात के चुनाव परिणामों ने मुझे भारी कष्ट पहुँचाया है। भारत में धर्मनिरपेक्षता का अस्तित्व खतरे में है। यदि भारत का आम हिन्दू साम्प्रदायिक हो गया तो

भविष्य में धर्मनिरपेक्षता किसके सहारे जीवित रहेगी? संघ का मजबूत होना धर्मनिरपेक्षता के लिये तो घातक है ही, स्वयं हिन्दुओं के लिये भी घातक है। अतः गुजरात चुनावों में संघ की विजय ने भारत की धर्मनिरपेक्षता के समक्ष संकट पैदा कर दिया है। किन्तु यदि गुजरात में कांग्रेस जीत जाती तो उससे भी मुझे कम कष्ट नहीं होता। गुजरात में भाजपा की जीत भाजपा की जीत न होकर संघ की जीत है। उसी तरह गुजरात में कांग्रेस की जीत भी विकास की जीत न होकर सीधे-सीधे मुसलमानों की जीत मानी जाती। गुजरात में चाहे जो भी जीतता, भारत के लिये हानिकारक ही था। क्योंकि गुजरात के चुनाव दो साम्प्रदायिक संगठनों के बीच लड़े जा रहे थे जिसमें दुर्भाग्यवश धर्मनिरपेक्ष विचार वाले दो भागों में बँटकर एक भाग गांधीवादियों के नेतृत्व में एक पक्ष का पिछलग्गू बना हुआ था तो दूसरा अटल बिहारी जी के नेतृत्व में दूसरे पक्ष के पीछे-पीछे चलने को बाध्य था। साम्प्रदायिकता को कुचला जा सकता है किन्तु संतुष्ट नहीं किया जा सकता। महात्मा गांधी सरीखे महापुरुष भी मुस्लिम साम्प्रदायिकता को न संतुष्ट कर सके न ही समझौता। और अंत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने भारत विभाजन कराकर ही दम लिया। जिस साम्प्रदायिकता को गांधी कभी संतुष्ट नहीं कर सके उसे हमारे आज के कुलदीप नैयर, प्रभाष जोशी तथा कुछ अन्य लोग विश्वसनीय समझ रहे हैं, यह हमारा भ्रम है। सच्चाई यह है कि भारत क्रमशः एक नये विभाजन की ओर बढ़ रहा है। यह विभाजन विलम्ब से होगा किन्तु अधिक खतरनाक होगा और यदि संघ परिवार मजबूत हुआ तो यह प्रक्रिया शीघ्र होगी किन्तु कम होगी। खतरे दोनों ही मार्गों में एक समान हैं।

मुझे अफसोस है कि इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में मैं कुछ नहीं कर सका। साम्प्रदायिक तत्वों के झगड़े में मैं किसी एक का पक्ष लेकर धर्मनिरपेक्ष होने का अपना अहं तुष्ट नहीं कर सकता था और वास्तविक धर्मनिरपेक्षता का गुजरात में कोई अस्तित्व नहीं था। मैं अकेला किसी तीसरी लाइन पर चलने की स्थिति में नहीं था। अतः अपने घर में बैठकर नियति के परिणाम की प्रतीक्षा करना मेरी मजबूरी थी। किन्तु अब भी सब अवसर समाप्त नहीं हुए हैं। अब तक गुजरात को दुहराने की योजनाएँ मात्र बन रही हैं। हम भी नई परिस्थितियों के आधार पर अपनी नई रणनीति बना सकते हैं। हमें राजनैतिक तीसरे मोर्चे को भूलकर एक धर्मनिरपेक्ष तीसरा मोर्चा बनाना चाहिए। अब तक धर्मनिरपेक्षता के दो रूप दिख रहे हैं। 1) संघ परिवार का, जो मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोध को ही धर्मनिरपेक्षता समझता है। 2) संघ रहित शेष लोग, जो संघ विरोध को ही धर्मनिरपेक्षता मानकर अपनी योजना बना रहे हैं। तीसरा मोर्चा ऐसा बनना चाहिए जो दोनों ही मोर्चों से भिन्न परिभाषा पर काम कर रहा हो अर्थात् साम्प्रदायिकता के विरुद्ध तीसरा मोर्चा। आज की परिस्थिति का यदि ठीक-ठीक आकलन करें तो मुसलमान लगभग धार्मिक मामले में इकट्ठा हैं। दूसरी ओर हिन्दू गुजरात को छोड़कर कहीं इकट्ठा नहीं हैं। गुजरात में हिन्दू एकत्रीकरण का यह पहला ही चरण मात्र है। अतः हमारी नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए कि हम हिन्दुओं का संघ परिवार की ओर पलायन रोक सकें। इस कार्य के लिये हमें धर्मनिरपेक्ष हिन्दुओं का इस प्रकार विश्वास जीतना होगा कि संघ परिवार अलग-थलग हो जाए। यह कार्य यद्यपि पहले तो कठिन नहीं था किन्तु अब थोड़ा कठिन हो गया है। संघ परिवार की अब तक की रणनीति यह है कि वह संगठन शक्ति के बल पर भावनात्मक मुद्दे उछालकर तथा असंवैधानिक तरीके से हिन्दुओं को अपनी ओर जोड़ रहा है। हम वैचारिक मुद्दे उछालकर, जनमत खड़ा करके तथा संवैधानिक तरीके से संविधान संशोधन कराकर हिन्दुओं को संतुष्ट कर सकते हैं। संघ राम मंदिर का मुद्दा सबसे ऊपर रखकर चल रहा है। हम समान नागरिक संहिता को सर्वोच्च मुद्दा बनाकर उनके मंदिर की हवा निकाल सकते हैं। हम समान नागरिक संहिता की ऐसी परिभाषा बना सकते हैं कि न मुसलमान ही उसका विरोध कर सके, न संघ परिवार। यह परिभाषा कठिन नहीं है। मेरे विचार में इनके तीन सूत्र तय हो सकते हैं।

1.सम्पूर्ण भारत में धर्म परिवर्तन कराने के प्रयास को दण्डनीय अपराध माना जाए।

2.भारत में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक के विचार को समाप्त किया जाए।

3.हिन्दू कोड बिल का नाम बदल दिया जाए। इसका स्वरूप भी इस तरह बदल दें कि यह हिन्दू धर्म में कोई हस्तक्षेप न करे। जिन प्रावधानों पर सबका सहमत हों, वे ही लागू करें।

उपरोक्त तीन विचार सामने आते ही धर्मनिरपेक्ष मोर्चे का मुस्लिम समुदाय विरोध करेगा। और मुस्लिम समुदाय का विरोध ही हिन्दू समुदाय में इस मोर्चे को विश्वसनीय बनाएगा। यह मोर्चा पूरी तरह मंदिर-मस्जिद जैसे संकीर्ण विवादों का डटकर विरोध करे। साथ ही संघ परिवार के अन्य साम्प्रदायिक विचारों का भी विरोध करे। यह तरीका संघ परिवार में विघटन पैदा करेगा तथा भा. ज. पा. का एक समूह सीधा-सीधा इस मोर्चे से जुड़ सकता है। मैं ऐसी उम्मीद करता हूँ कि कांग्रेस पार्टी भी बहुत आसानी से इस अभियान में शामिल हो जाएगी। क्योंकि यह रास्ता कांग्रेस को साधु-संतों या मंदिरों की चापलूसी से मुक्त करा देगा।

मैंने पूर्व में भी लिखा था और अब पुनः लिख रहा हूँ कि साम्प्रदायिकता से मुकाबला सहिष्णुता से कदापि संभव नहीं है। सहिष्णुता व्यक्ति के लिये अच्छा गुण है किन्तु यदि व्यवस्था प्रमुख ऐसा मार्ग चुने तो वह दुर्गुण हो जाता है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ मुस्लिम कट्टरवाद के प्रति सहिष्णुता से जोड़कर देखना सच्चाई से दूर भागने के समान है और मेरे धर्मनिरपेक्ष यही भूल लगातार कर रहे हैं। गुजरात ने

एक अवसर दिया है कि वे अपनी हठधर्मिता छोड़ें और सम्पूर्ण कार्यप्रणाली पर पुनर्विचार करें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो भारत का जो साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण होगा उसका दायित्व धर्मनिरपेक्ष मित्रों का माना जाएगा।

पत्रोत्तर

1. श्री अरविन्द अग्रवाल, नोएडा, उत्तर प्रदेश

विचार - प्रवीण जी के साथ एक बैठक में नोएडा में आपसे मेरी कुछ चर्चा हुई थी। आपने कहा था कि सिर्फ संघ परिवार ही हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता। हम सबको मिलकर हिन्दुत्व की संघ लाइन से हटकर भी सोचना चाहिए। प्रश्न उठता है कि अकबरुद्दीन सरीखे लोग कुछ भी हिन्दू समाज के विरुद्ध बोलते रहें और हम हिन्दू चुपचाप सुनते रहें, यह मार्ग ठीक है अथवा अमेरिका-इज़राइल सरीखे ताकतवर बनकर ऐसे तत्वों की ज़बान बंद करना ठीक है। मेरा उद्देश्य इन मार्गों में से क्या उचित है, इसकी विस्तृत समीक्षा करना है। मैं मानता हूँ कि आप हिन्दू और मुसलमान के रूप में वर्ग विभाजन के विरुद्ध हैं, तो ऐसे-ऐसे जहरीले विचारों के प्रचार-प्रसार को रोकने का तरीका क्या हो? मेरे विचार में तो ऐसे आतंकवादी विचारों पर नियंत्रण के लिये ऐसे तत्वों को भारत-मुक्त कर देना चाहिए तभी भारत एक मजबूत हिन्दू राष्ट्र के रूप में आगे आकर ऐसी समस्याओं से मुक्त हो सकेगा। मैं इस विषय पर आपकी विस्तृत समीक्षा चाहता हूँ।

उत्तर - अपनी-अपनी क्षमता का आकलन करके ही अपनी प्राथमिकताएँ तय की जाती हैं। एक घड़ी का एक काँटा एक मिनट में पूरा एक चक्कर लगा लेता है तो दूसरा काँटा एक घंटे में और तीसरा एक दिन में तो चौथा एक वर्ष में। सभी काँटे अपनी-अपनी धुरी पर स्वतंत्र घूमते हुए भी वार्षिक काँटे को गति देते रहते हैं। पृथ्वी की चाल भी कुछ इसी तरह होती है। मनुष्य भी अपनी-अपनी क्षमता अनुसार ऐसे ही चलता है। किसी की सर्वोच्च प्राथमिकता परिवार तक ही सीमित होती है तो किसी अन्य की राष्ट्र तक तथा किसी अन्य की विश्व समाज तक। व्यक्ति यदि परिवार तक सीमित है तो उसका कुछ अंश विश्व समाज के लिये होता ही है और यदि वह विश्व समाज के लिये समर्पित है तो व्यक्ति के साथ भी उसका जुड़ाव रहेगा ही। व्यक्ति से लेकर समाज तक की सभी इकाइयाँ एक-दूसरे के साथ संबद्ध होती हैं। मैं प्रवृत्ति से ब्राह्मण हूँ और आप क्षत्रिय। स्वाभाविक है कि दोनों का कार्य करने का ढंग अलग-अलग होगा। यह भिन्नता एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं है क्योंकि कहीं न कहीं इनका लक्ष्य समान है। आप अपनी क्षमता अनुसार राष्ट्र को सर्वोच्च इकाई मानकर उसकी सर्वाधिक चिंता करते हैं तो मैं ब्राह्मण होने के कारण समाज को सर्वोच्च मानकर उसी दिशा में ज्यादा सोचता हूँ। व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के चारों गुण विशेष होते हैं जो उस व्यक्ति को उस समुदाय के साथ जोड़कर रखते हैं। व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों में भी तीन संस्कारों का समावेश होता है। (1) जन्म पूर्व के संस्कार (2) पारिवारिक वातावरण (3) सामाजिक परिवेश। व्यक्ति पर तीनों का प्रभाव होता है किन्तु किस व्यक्ति पर तीन में से किसका ज्यादा प्रभाव है, यह बताना कठिन होता है। जन्म पूर्व के संस्कारों पर तो हिन्दू-मुसलमान का कोई प्रभाव बदलना संभव नहीं, किन्तु पारिवारिक वातावरण तथा सामाजिक परिवेश को प्रभावित करना संभव है। यही कारण है कि हिन्दू और मुसलमान सामाजिक रूप से भी दो अलग-अलग समूहों में दिखते हैं। एक कसाई के हाथों गाय की रक्षा करने का उद्देश्य सबका समान हो सकता है किन्तु मार्ग सबका भिन्न-भिन्न भी हो सकता है। एक ब्राह्मण प्रवृत्ति वाला उसके हृदय परिवर्तन की चेष्टा करेगा तो क्षत्रिय उसे झापड़ मार सकता है। वैश्य लोभ-लालच दे सकता है या धोखा दे सकता है और शूद्र देखकर भी उससे अपने को नहीं जोड़ पाता। यदि सामाजिक संगठन की समीक्षा करें तो हिन्दू आम तौर पर ब्राह्मण प्रवृत्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है तो मुसलमान क्षत्रिय प्रवृत्ति को स्वाभाविक मार्ग मानता है, ईसाई वैश्य मार्ग को और साम्यवादी शूद्र मार्ग को। यदि हम स्वतंत्रता पूर्व का आकलन करें तो स्वतंत्रता संघर्ष में भी गांधी ब्राह्मण प्रवृत्ति के पक्षधर थे तो सुभाष चन्द्र बोस, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि क्षत्रिय मार्ग के। दोनों का लक्ष्य भी एक था और नीयत भी साफ थी। त्याग के मामले में क्रान्तिकारी गांधी से आगे थे किन्तु देश-काल-परिस्थिति अनुसार गांधी का मार्ग ज्यादा सफल हुआ, क्योंकि टकराव किसी वैश्य प्रवृत्ति वाले अंग्रेजों से था। यदि यही टकराव साम्यवादी रूस-चीन के साथ रहा होता या किसी मुस्लिम देश से होता तो गांधी का मार्ग सफल नहीं होता। गांधी ने शत्रु की मानसिकता का आकलन कर संघर्ष का मार्ग चुना और क्रान्तिकारियों ने परम्परागत। अहिंसा की ताकत को प्रमाणित होने के बाद भी आज तक कुछ लोग “मेरी मुर्गी की तीन टांग” का राग अलापते देखे जा सकते हैं। ऐसे लोगों को फिर से सोचना चाहिए। गांधी का मार्ग ठीक है या सुभाष का, यह विचार तो तभी किया जा सकता है जब तानाशाही हो तथा व्यवस्था परिवर्तन के कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हों। स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतंत्र है। लोकतंत्र में ऐसी बहस हो ही नहीं सकती। लोकतंत्र में आप हिन्दू राष्ट्र भी बना सकते हैं और

अकबरुद्दीन सरीखे लोगों को फाँसी भी दे सकते हैं, किन्तु यह सब आप किसी व्यवस्था के माध्यम से ही करा सकते हैं, स्वतंत्र रूप से नहीं। स्वाभाविक है कि ऐसी व्यवस्था प्रवीण तोगड़िया और अकबरुद्दीन के बीच फर्क नहीं कर सकती। हिन्दू राष्ट्र घोषित होने के बाद भी तब तक फर्क नहीं कर सकती जब तक आप मुस्लिम देशों की नकल करते हुए ईशनिंदा कानून सरीखा कोई प्रावधान न कर लें। चूँकि हिन्दू जन्म से ही व्यक्तिगत आचरण को महत्वपूर्ण मानता है और इस्लाम संगठन शक्ति को। हिन्दू अपने को गाय के समान मानता है और मुसलमान शेर के समान। ऐसी स्थिति में गाय सशक्तिकरण एक आवश्यकता होते हुए भी संभव नहीं। अस्सी वर्षों से संघ परिवार ने सारा जोर लगा दिया किन्तु कितने प्रतिशत सफलता मिली? मुस्लिम आबादी से प्रत्यक्ष टकराव में तो ये गाय रूपी हिन्दू कितना टिकेंगे, यह दूर की बात है किन्तु गुप्त मतदान तक में इनके हिन्दुत्व में कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखता। अकबरुद्दीन ने ठीक ही कहा था कि यदि दो घंटे के लिये बीच से पुलिस हट जाए तो वे मुट्ठी भर लोग इन गायों का सफाया कर सकते हैं। बदले में प्रवीण तोगड़िया ने जो कुछ भी कहा उसमें लेशमात्र की सच्चाई नहीं। भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था ऐसे कट्टरवादी तत्वों से सुरक्षा ही देती है। इस व्यवस्था को कमजोर करना घातक ही होगा। न भारत दुनिया में अकेला निर्णायक है और न हिन्दू भारत में। साम्यवाद ने दुनिया में अपने तरीके से मार्ग बनाना चाहा जो अन्त में राह बदलने को मजबूर हुआ। इस्लाम अपने तरीके से दुनिया को बदलना चाहता है जो धीरे-धीरे संकट में आता जा रहा है। संघ परिवार तो दुनिया में कोई विशेष ताकत है ही नहीं। भारत में यदि कुछ लोग इस क्षत्रिय प्रधान आवाज को ज़िन्दा रखने की कोशिश कर रहे हैं, यह उनके लिये भी घातक है और हिन्दुओं के लिये भी। केन्द्रीयकरण, तानाशाही, कभी लोकतंत्र से अच्छी नहीं हो सकती। लोकतंत्र में बल प्रयोग का समर्थन कभी विचार-मंथन से ऊपर नहीं हो सकता। भारत जैसे देश में जहाँ बहुजन हिन्दू हैं और हिन्दुओं में भी बहुजन व्यवस्था को मानने वालों का है, वहाँ सामाजिक हिंसा का समर्थन या तो इस्लाम का समर्थन है या साम्यवाद का। ऐसी आवाज उठाने वाला कोई चोटी वाला भी हो तब भी उसका सामाजिक हिंसा समर्थक मार्ग हिन्दुत्व का मार्ग नहीं कहा जा सकता। यदि आप मानते हैं कि भारत में लोकतंत्र है तो आपको सामाजिक हिंसा का विरोध करना ही चाहिए। यदि आप भारत में लोकतंत्र को असफल मानकर केन्द्रित तानाशाही के पक्षधर हैं तथा उस मार्ग के लिये भी लोकतांत्रिक मार्ग को असंभव मानते हैं तो आप अफज़ल गुरु, नक्सलवाद, या प्रज्ञा ठाकुर, असीमानन्द का मार्ग भी पकड़ सकते हैं। इन सबका मार्ग गलत था या सही, यह अपनी-अपनी सोच है। किन्तु ये सब अपने मार्ग के प्रति ईमानदार थे, न कि अकबरुद्दीन, प्रवीण तोगड़िया, अशोक सिंघल सरीखे नाटकबाज़। ये नाटकबाज़ लोग शक्तिप्रिय हिन्दुओं-मुसलमानों को हिंसा के लिये प्रोत्साहित तो करते हैं किन्तु स्वयं तो कभी हिंसा नहीं करते। प्रवीण तोगड़िया, अशोक सिंघल या उनके समर्थक या तो व्यवस्था का समर्थन करें या लोकतांत्रिक तरीके से लोगों को व्यवस्था परिवर्तन के लिये सहमत करें, अन्यथा एक बन्दूक लेकर जाकर ऐसे तत्वों की हत्या कर दें। किसने रोका है इन्हें ऐसा बम पटकने से? स्वयं तो कमांडर के रूप में पीछे रहेंगे, अपने भागने के सारे द्वार खुले रहेंगे और शेष समाज को दंगों के समर्थन में उकसाते रहेंगे। यह मार्ग न पहले ठीक था न अब ठीक है। विशेषकर तब तो बिल्कुल ही गलत है जब दुनिया क्षत्रिय प्रवृत्ति और शूद्र प्रवृत्ति की राजनैतिक व्यवस्था को अस्वीकार करके ब्राह्मण और वैश्य प्रवृत्ति के बीच विभाजित हो रही है। अब दुनिया में सैनिक टकराव की संभावनाएँ घट रही हैं। ऐसी स्थिति में भारत और विशेषकर हिन्दुत्व की ब्राह्मण प्रवृत्ति की संभावनाएँ प्रबल हैं। भविष्य में प्रतिस्पर्धा इन दोनों के बीच होनी है, जिसमें हिन्दुओं की ब्राह्मण प्रवृत्ति पाश्चात्य वैश्य प्रवृत्ति को पछाड़ सकती है। जबसे हम लोगों ने हिन्दुत्व को संगठन से निकालकर उसके मूल स्वरूप की दिशा देने की कोशिश शुरू की, तभी से हम लगातार आगे बढ़ रहे हैं। हमारे इस प्रयत्न में संघ परिवार के लोगों का सर्वाधिक समर्थन मिल रहा है। पिछले 10 वर्षों से संघ और नरेन्द्र मोदी जिस दिशा में चल रहे हैं, वह बिल्कुल ठीक दिशा है। हम अवश्य सफल होंगे। आपने ऐसे तत्वों से निपटने का मार्ग पूछा है। मैंने बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व ऐसे तत्वों से निपटने का मार्ग सुझाया था। यह मार्ग ज्ञानतत्त्व 105 में भी छपा है और नई दिशा पुस्तक में भी। वह सुझाव इस तरह है—

धार्मिक आधार पर चार सम्प्रदाय होते हैं।

1.जो मान्यता में कट्टरवादी हैं तथा आचरण में भी कट्टरवादी हैं। (दूसरों के मूल अधिकारों का हनन करते हैं।)

2.जो मान्यता में शांतिप्रिय हैं और आचरण में कट्टरवादी।

3.जो मान्यता में कट्टरवादी हैं परन्तु आचरण में शांतिप्रिय।

4.जो मान्यता तथा आचरण दोनों में शांतिप्रिय हैं।

कट्टरवादी मुसलमान पहली श्रेणी में, कट्टरवादी हिन्दू दूसरी श्रेणी में, शांतिप्रिय मुसलमान तीसरी श्रेणी में और शांतिप्रिय हिन्दू चौथी श्रेणी में आते हैं। हमें पहली श्रेणी को तत्काल नष्ट कर देना चाहिए तथा दूसरी को भी नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए। तीसरी श्रेणी का हृदय परिवर्तन और चौथी श्रेणी का अनुकरण उपयुक्त मार्ग है।

वर्तमान स्थितियों में पहली और दूसरी श्रेणी के विरुद्ध तीसरी और चौथी श्रेणी को एकजुट हो जाना चाहिए।

2.कट्टरवादी हिन्दू और कट्टरवादी मुसलमान ऐसा ध्रुवीकरण पसन्द नहीं करेंगे।

3.धार्मिक एकीकरण किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान नहीं है। भारत के सब लोग हिन्दू, मुसलमान या ईसाई होकर किसी भी एक धर्म के हो जाएँ, तब भी चोरी,

डकैती, बलात्कार, आतंकवाद, मिलावट आदि में से किसी समस्या का कोई समाधान सम्भव नहीं है।
4.धर्म संकट में है। धर्म की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख सभी धर्मप्रेमियों को एकजुट होकर अधर्म के विरुद्ध संघर्ष शुरू कर देना चाहिए।
5.यदि भगवान राम का पृथ्वी पर अवतरण हो जाए तो वे सर्वप्रथम आसुरी शक्तियों से संघर्ष शुरू कर देंगे, चाहे ऐसे तत्व किसी भी धर्म (सम्प्रदाय) के हों।
6.धर्म की व्यवस्थाएँ कुछ लोगों के जीवनयापन के साथ जुड़ गई हैं। अतः धर्म की अपने अनुकूल व्याख्या करना उनकी मजबूरी भी है।
मैंने आपकी इच्छानुसार बहुत विस्तृत चर्चा की है। आपके अगले प्रश्न की प्रतीक्षा करूँगा।

प्रश्नोत्तर

मैं कभी-कभी आपके कार्यक्रमों में भी रामानुजगंज आया हूँ। मैं ज्ञानतत्त्व भी हमेशा पढ़ता हूँ और सुरक्षित भी रखता हूँ। मैं यह भी समझता हूँ कि आपकी लिखी या कही गई बातें लगभग सही होती हैं, लेकिन अभी कुछ वर्षों से संघ के विषय में आपके विचार बदले हुए दिखते हैं। मैंने रामानुजगंज में सुना था कि आपने वहाँ शहर में संघ की शाखा लगना बंद करवा दिया था। आपकी संघ से लंबे समय तक असहमति रही है। आपने ज्ञानतत्त्व में कई बार संघ की कटु आलोचना की है। ऐसे कई ज्ञानतत्त्व मेरे पास आज भी सुरक्षित हैं। उनमें से 3-4 उदाहरण मैं वर्तमान पत्र में दे रहा हूँ, जो इस प्रकार हैं।

ज्ञानतत्त्व 128 - मार्च 2007

(7) श्री रविन्द्र सिंह तोमर, गुना, मध्य प्रदेश।
विचार – संघ को जहाँ तक मैं समझा हूँ, वहाँ तक ये लोग सामाजिक प्रदूषण फैलाते रहते हैं। इनके सारे काम गुप्त होते हैं। सच भी है कि हिंसक अतिवादी लोग गुप्त काम करने के ही अभ्यस्त होते हैं। इन्होंने गोडसे जैसे हिंसक व्यक्ति और उसकी विचारधारा को प्रोत्साहित किया है। इन लोगों ने बड़ी संख्या में मुसलमानों और दलितों को अनावश्यक जेल में बंद करके रखा हुआ है। अपूर्वानन्द जी के जिस लेख का जिक्र आपने किया है, वह पाठकों को खुली बहस के लिये भेजना उचित प्रतीत होता है।
उत्तर – आपने संघ के विषय में जो कुछ समझा है, उससे मैं सहमत हूँ। यह सच है कि ये अतिवादी होते हैं। ये समाज में अपना आदर्श थोपते रहते हैं। ये अपने को हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति का स्वाभाविक ठेकेदार मानते हैं। किन्तु आपने जो समझा, वह बिल्कुल अधूरा है। आपने यह नहीं समझा कि संघ का जैसा स्वभाव है, इस्लाम का स्वभाव उससे कुछ अधिक ही वैसा है। मुसलमानों की संख्या जेलों में अधिक है, यदि यह सच है, तो बहुत ही शर्म की बात है अन्य मुसलमानों के लिये भी। मुसलमानों और दलितों को संघ के लोगों द्वारा जेल में बंद कराने का आपका तर्क इसलिये अर्थहीन है कि संघ-विरोधी राज्यों में भी इनकी संख्या अधिक क्यों है? महाराष्ट्र में इनकी संख्या अधिक क्यों है? जब भी कोई मुसलमान आतंकवादी पकड़ा जाता है तो सभी धर्मनिरपेक्ष लोग भी अंत तक उनके निर्दोष होने का वातावरण बनाने में क्यों लगे रहते हैं? धर्मनिरपेक्षों की मुस्लिम आतंकवादियों के साथ होने वाली स्वाभाविक सहानुभूति को भी यदि आपने समझा होता तो आपको समझने में मुझे अधिक सुविधा होती। आज ही मैंने समष्टि नामक पत्रिका का नवम्बर-दिसम्बर अंक पढ़ा। पत्रिका के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है क्योंकि उसने तो मालेगाँव बम विस्फोट कांड तथा बम्बई रेल धमाका कांड में बजरंग दल का हाथ सिद्ध करने का भरपूर प्रयास किया है। पत्रिका में कई जगह इस प्रयास के लिये काफी खींचतान भी की है। किन्तु इस पत्रिका में प्रसिद्ध समाजशास्त्री असगर अली इंजीनियर का नाम पढ़कर चौंक गया। उनके विषय में मेरी धारणा एक वास्तविक धर्मनिरपेक्ष की रही है। सर्वोदय के अधिवेशनों में उन्हें समझने का अवसर भी मिला। किन्तु इस पत्रिका में छपा देखकर कि इंजीनियर जी भी मालेगाँव बम विस्फोट कांड में संदेहास्पद मुस्लिम आरोपियों के पक्ष में इस सीमा तक आगे बढ़े कि उन्होंने अपने कथन के पक्ष में पुलिस की निष्पक्षता पर भी आरोप लगा दिये। मैं अब भी समझता हूँ कि असगर अली इंजीनियर जी ने या तो आरोपियों के पक्ष में खड़े होने की जल्दबाजी करके भूल की अथवा असगर अली जी के कट्टर मुस्लिम फिरकापरस्त चेहरे को धर्मनिरपेक्ष समझने की मैंने भूल की। कहीं तो भूल अवश्य हुई है। अब जब पुलिस जाँच में सिद्ध हो चुका है कि बम विस्फोटों में आतंकवादी मुसलमानों का ही हाथ था, बजरंग दल का नहीं, तो इंजीनियर जी को अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। मेरे एक मित्र उग्रनाथ जी, नागरिक, लखनऊ वाले के विषय में मेरी बहुत अच्छी धारणा है। मैं उनकी सत्य-शोधन धारणा का प्रशंसक हूँ। उन्होंने भी इंजीनियर जी की बहुत प्रशंसा की थी। मैं इस संबंध में उनके भी विचार जानना चाहूँगा। मेरा रविन्द्र सिंह तोमर जी से विशेष आग्रह है कि वे धर्मनिरपेक्षता की ठीक-ठीक परिभाषा को समझने का प्रयास करें तो और अधिक अच्छा होगा। हिन्दू होते हुए भी संघ की आलोचना और इस्लाम की चापलूसी को धर्मनिरपेक्षता कहने के दिन अब नहीं रहे। ऐसे धर्मनिरपेक्षों की पोल खुलने लगी है। अब तो

भारत में धर्मनिरपेक्षता का वह स्वरूप सामने आ रहा है, जिसमें सभी साम्प्रदायिक शक्तियों को एक मंच पर खड़ा करके उनके विरुद्ध बिना हिन्दू, मुसलमानों, ईसाई का भेद किये सभी धर्मनिरपेक्षों को खड़ा किया जाएगा। मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि इस धर्मनिरपेक्ष समूह को नकली धर्मनिरपेक्षों से मुक्त ही रखा जाएगा। आशा है कि तोमर जी हमारे साथ रहेंगे।

ज्ञानतत्व 161 सितंबर 2008

प्रश्न- पिछले दिनों कानपुर, उत्तर प्रदेश में बम बनाते समय बजरंग दल के दो कार्यकर्ताओं की मौत हो गई। दोनों हिन्दूवादी संगठन आर.एस.एस. की ही एक उग्रवादी शाखा बजरंग दल के सदस्य थे। आप सिमी की आलोचना करते-करते इस्लाम तक की आलोचना करने लगते हैं। अब इस कानपुर की घटना के बाद आप क्या कहेंगे?

उत्तर- संघ किसी भी रूप में हिन्दुओं का प्रतिनिधि नहीं है। उसे हिन्दू बहुमत का न प्रत्यक्ष समर्थन है, न परोक्ष। वह ऐसे लोगों का एक समूह है जो इस्लामी विचारधारा के आधार पर चलकर हिन्दुत्व की रक्षा करना चाहता है, जो बिल्कुल असंभव है। और यदि हो भी जाए तो हमें ऐसा हिन्दुत्व नहीं चाहिए। किन्तु सिमी के लिए आम मुसलमानों में परोक्ष समर्थन दिखता है। नेपाल में हिन्दू राष्ट्र गया और लोकतंत्र पर इस्लामिक कट्टरवाद हावी है। मुफ़्ती मोहम्मद सईद ने जिन्ना की राह पकड़ ली है। बताइए कि भारत का मुसलमान मुफ़्ती की आलोचना से दूर क्यों है? बजरंग दल की जो बात सामने आई, वह साम्प्रदायिक शक्तियों का आपसी मामला है। यदि शेर की सवारी होगी तो जान को खतरा भी बना ही रहेगा। यदि संघ उग्रवाद की राह पर चलता रहा तो जिस तरह आज बजरंग दल के कुछ लोग सामने आए हैं, उसी तरह भविष्य में संघ के भी कुछ लोग सामने आ सकते हैं। पानी में डूबकर मछली निगलने का सुख कभी दुःख में भी बदल सकता है। आपने यदि यह प्रश्न बजरंग दल की आलोचना के उद्देश्य से किया है तो मुझे आपके प्रश्न से खुशी हुई है और यदि आपका प्रश्न सिमी के समर्थन के उद्देश्य से किया गया है तो आपने गलत व्यक्ति से यह प्रश्न किया है। मैं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संघ से कोई अतिरिक्त सहानुभूति नहीं रखता। मैंने बहुत वर्ष पहले ज्ञान-तत्त्व मंथन नाम से एक पुस्तक लिखी थी। उसके कुछ अंश बाद में नई दिशा में भी छपे हैं। मैंने लिखा है कि मेरे विचार में शांतिप्रिय हिन्दू हमारे सामाजिक आदर्श हो सकते हैं और शांतिप्रिय मुसलमान हमारे सहयोगी। दूसरी ओर उग्रवादी हिन्दू हमारे विरोधी माने जाने चाहिए और उग्रवादी मुसलमान शत्रु। सिमी और संघ में मैं इतना ही फर्क करता रहा हूँ। इससे अधिक नहीं। इस फर्क का कारण भी मैंने उस किताब में लिखा है, किन्तु मेरे विचार से व्यवहार में शांतिप्रिय मुसलमान किसी संघवादी हिन्दू से कई गुना अच्छा है। इन दोनों की कोई तुलना ही नहीं हो सकती। बजरंग दल के लोगों ने जो किया, उसके लिए वे दोनों व्यक्ति ही आलोचना के पात्र नहीं हैं, बल्कि वह समूची बिरादरी ही आलोचना की पात्र है, जो ऐसी विचारधारा पर चल रही है।

ज्ञानतत्व 93 मई 2005

प्रश्न - श्री अशोक यादव, रोहिणी, दिल्ली

पिछले दिनों सरसंघचालक श्री सुदर्शन जी ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी को लक्ष्य बनाकर जो टिप्पणियाँ कीं, वे अभूतपूर्व थीं। इन टिप्पणियों का संघ पर भी प्रभाव पड़ा और भाजपा पर भी। क्या उनकी ये टिप्पणियाँ उचित थीं? क्या ऐसी चर्चाओं से संघ परिवार को लाभ होगा? ऐसी टिप्पणी करना कितना समयानुकूल था और कितना प्रतिकूल? इस पर आप विस्तृत चर्चा करें।

उत्तर- इस मुद्दे पर विचार करते समय हमें स्थितियों पर विचार करना होगा।

(1) क्या ये टिप्पणियाँ संघ द्वारा सुविचारित निष्कर्ष निकालकर योजनापूर्वक की गईं?

(2) क्या ये टिप्पणियाँ संघ द्वारा अल्पकालिक आवेश का परिणाम थीं?

(3) क्या ये टिप्पणियाँ संघ प्रमुख सुदर्शन जी की अटल जी के विरुद्ध व्यक्तिगत कुंठा का परिणाम थीं?

संघ बहुत ही योजनापूर्वक टिप्पणी करने के लिए प्रसिद्ध है। सरसंघचालक तो आमतौर पर कोई टिप्पणी करते ही नहीं। यदि कोई टिप्पणी सरसंघचालक करते हैं तो वह पूरे संघ की सुविचारित टिप्पणी मानी जाती है। वर्तमान समय में यह प्रमाणित हो चुका है कि संघ चौराहे पर खड़ा है। यदि संघ का लक्ष्य राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना है तो उसे हर हालत में उदारवादी हिन्दुत्व के उस मार्ग पर चलना ही होगा, जो भाजपा ने अटल-आडवाणी के नेतृत्व में स्वीकार किया है। भारत का आम हिन्दू धर्मनिरपेक्ष स्वभाव का है। उसके संस्कार बदलकर भाजपा को खड़ा नहीं किया जा सकता। भारत के आम नागरिकों के समक्ष धर्म के साथ-साथ अन्य भी अनेक समस्याएँ हैं, जिनका समाधान कट्टरवादी हिन्दुत्व के पास नहीं है। अतः भाजपा के पास उदारवादी हिन्दुत्व के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग है ही नहीं। दूसरी ओर यदि संघ का उद्देश्य राजनीतिक न होकर धर्मप्रधान है, तो उसे हर हालत में भाजपा से पिंड छुड़ाना ही होगा। यदि भाजपा से संघ की पहचान समाप्त हो जाए तो मंदिर भी संभव है और तीन सौ सत्तर भी। संघ की शक्ति की प्रत्यक्ष अवहेलना साम्यवादी दलों को छोड़कर अन्य कोई दल नहीं कर पाएँगे। हो सकता है कि संघ ने गहन सोच-विचार के बाद भाजपा से पिंड छुड़ाकर तटस्थ संगठन के रूप में स्वयं को स्थापित करने का मन बना लिया हो। वैसे सुदर्शन जी के बयान से इतना गंभीर अर्थ निकलना कठिन दिखता है, किन्तु यदि ऐसा है तो यह संघ को आगे बढ़ने का एक अच्छा अवसर प्रदान कर

सकता है।

दूसरे प्रकार की संभावना भी हो सकती है कि संघ के आनुषंगिक संगठन विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, भारतीय मजदूर संघ तथा स्वदेशी जागरण मंच पूरी तरह अटल-आडवाणी की आर्थिक तथा मंदिर संबंधी नीतियों के विरुद्ध रहे। ये चारों संगठन दिन-रात भाजपा की उदारवादी नीतियों को गालियाँ देते रहे और एक नया राजनीतिक दल बनाने तक की धमकी देते रहे। इन चारों संगठनों के अभाव में संघ की शक्ति कमजोर दिख सकती है। अतः इनके रोज-रोज के प्रचार से प्रभावित होकर संघ ने अटल-आडवाणी नेतृत्व से पिंड छुड़ाने का मन बना लिया हो। पिछले चार माह से जिस तरह संघ पदाधिकारियों द्वारा आडवाणी जी की परेड ली जाती थी, उसके समक्ष आडवाणी जी लगातार झुकते चले गए। संघ के तीखे तेवरों का भाजपा में कोई विरोध भी नहीं हुआ। इससे उत्साहित होकर संघ ने अंतिम आक्रमण भावावेश में आकर कर दिया हो और इसके परिणामों की गंभीरता पर कोई गंभीर सोच न बनाई हो।

तीसरा आधार भी संभव है। सुदर्शन जी के मन में अटल जी के प्रति कुंठा का भाव सदा मौजूद रहा। प्रधानमंत्री बनने के बाद अटल जी ने संघ के प्रति जैसा व्यवहार बनाया, उससे वह कुंठा बढ़ी ही। अटल जी के व्यक्तिगत खान-पान और रहन-सहन की जो बातें सामने आईं, वे संघ की आचार-संहिता के विपरीत थीं। इन बातों ने आग में घी का काम किया। परिणामस्वरूप बिना किसी गंभीर योजना के सुदर्शन जी ने व्यक्तिगत कुंठा के कारण ऐसी टिप्पणी कर दी हो और जब उक्त टिप्पणी से पीछे हटना संभव न हो। मुझे तो यह तीसरा कारण अधिक संभव दिखता है, भले ही वैसा न भी हो। यदि उक्त टिप्पणी का पहला सुविचारित आधार है तो चिंता की कोई बात नहीं। इससे दीर्घकालिक परिणाम ठीक ही होंगे। भाजपा और संघ स्वतंत्रतापूर्वक अपनी दिशाओं में आगे बढ़ेंगे। किन्तु यदि उक्त टिप्पणी का पहला कारण न होकर दूसरा या तीसरा है, तो दोनों ही संगठनों को गंभीर क्षति हो सकती है। प्रारंभ में तो कुछ ऐसा लगा था कि भाजपा को अधिक और संघ को कम क्षति होगी, किन्तु अब तो उल्टा दिख रहा है कि भाजपा को कम और संघ को अधिक क्षति होने की संभावना है। यदि अटल जी के विरुद्ध लगाए गए दो आरोप सच भी हैं, तो अटल जी भारत में अन्य दलों के राजनेताओं की अपेक्षा कम बुरे माने जाएँगे। यदि सुदर्शन जी अटल जी के आचरण को अपनी कसौटी पर कसकर उसे पास-फेल करना चाहते हैं, तो यह उनकी भूल है, अटल जी की नहीं। राजनीति में उन्हें व्यावहारिक कसौटी ही बनानी होगी और यदि नहीं बना सकते तो राजनीति में टाँग अड़ाना गलती है। मेरी संघ के भी कई अच्छे लोगों से चर्चा हुई। किसी के समझ में यह नहीं आया है कि सुदर्शन जी ने उक्त टिप्पणी हेतु यह अवसर ही क्यों चुना। अटल-आडवाणी यदि चुनाव जीत जाते, तब भी क्या वे दोषी थे? और यदि नहीं थे तो अब ऐसी कठोर बातें क्यों? क्यों नहीं यह इशारा धीरे से कर दिया गया? छह माह पूर्व ही स्थिति एकदम खराब दिख रही थी। बिहार और झारखंड के चुनावों ने उसे कुछ सँभाला। फिर एकाएक ऐसा आक्रमण क्यों? किसी के कुछ समझ नहीं आ रहा। चारों ओर मरघट की शांति है। सुदर्शन जी की टिप्पणी ने संघ और भाजपा दोनों को गंभीर क्षति पहुँचाई है। टिप्पणी में सच्चाई कितनी है, यह महत्वपूर्ण नहीं। महत्वपूर्ण यह है कि टिप्पणी किसी सीमा तक भाजपा तथा संघ के हित में है, कितनी हिन्दुत्व को मजबूत करेगी और कितनी राष्ट्र के लिये उपयोगी होगी। उपरोक्त तीनों ही मामलों में टिप्पणी उपयोगी नहीं। भारत का एक सामान्य नागरिक भी दबी जुबान से प्रश्न करता है कि सरसंघचालक जैसे सर्वोच्च पद पर आसीन व्यक्ति स्वयं अपना पद युवाओं को न सौंपकर अटल-आडवाणी को उम्र के आधार पर युवाओं को पद देने की माँग करे, तो चुप होने के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं सूझता। अच्छा होता यदि सुदर्शन जी ऐसी टिप्पणी के पूर्व कुछ और विचार-मंथन करते। किन्तु अब तो जो होना था, हो चुका। बीमारी सड़क पर आकर आम लोगों के समक्ष प्रकट हो चुकी है। देखिए आगे इसका क्या परिणाम होता है।

ज्ञान तत्व 188 नवम्बर 2009 . लागा चुनरी में दाग, छुपाऊँ कैसे?

जब कोई व्यक्ति या संगठन अपने गुण को संस्कार या सिद्धांत के रूप में प्रचारित कर देता है, तो उस गुण को निरंतर बनाए रखना उसकी मजबूरी भी हो जाया करती है। ऐसे गुण से पीछे हटना उस व्यक्ति या संगठन के लिये बहुत हानिकारक हो जाया करता है। कभी-कभी तो यह हानि सामान्य से भी कई गुना अधिक हो जाती है। संघ परिवार ने स्वयं को हिन्दू समाज का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा किया। यदि किसी और संगठन ने ऐसा दावा किया, तो संघ परिवार ने उसे भी अपने साथ जोड़ लिया। हिन्दू समाज का यह विशेष गुण होता है कि वह सामान्य स्थिति में बल-प्रयोग का सहारा न लेकर बल-प्रयोग का दायित्व राज्य व्यवस्था पर ही छोड़ देता है। यदि व्यवस्था कुछ न भी करे, तो वह ईश्वरेच्छा समझकर उसे स्वीकार कर लेता है, किन्तु प्रतिक्रिया नहीं करता। संघ परिवार ने धीरे-धीरे हिन्दू समाज को ऐसी प्रतिक्रिया हेतु प्रेरित किया और कुछ अंशों में सफल भी हुए। किन्तु संघ परिवार समाज में यह दावा करता रहा कि संघ परिवार सिर्फ प्रतिक्रिया तक ही सीमित है, क्रिया कभी नहीं करता, अर्थात् वह कभी हिंसा की पहल नहीं करता। संघ परिवार के इस दावे में सच्चाई भी रही, क्योंकि भारत में होने वाली किसी भी सामूहिक हिंसा की पहल हिन्दू समाज द्वारा किये जाने का कोई रिकॉर्ड नहीं है। विरोधी पक्ष अर्थात् मुसलमानों या ईसाइयों के विरुद्ध भी नहीं। हिंसा की पहल हमेशा दूसरे ही पक्ष से

होती रही है। गांधी हत्या के कलंक को यदि अलग कर दें, तो स्वतंत्रता के बाद ऐसे मामलों में संघ परिवार भी कभी पहल करने में सक्रिय नहीं रहा है। यही कारण रहा कि मालेगाँव में संदेह के प्रमाण होते हुए भी लंबे समय तक संदेह मुसलमानों पर ही बना रहा था। यहाँ तक कि संदेह में कुछ मुसलमान लंबे समय तक जेलों में भी बंद रहे। यहाँ तक कि जब तक प्रज्ञा पुरोहित मामला सामने नहीं आया, तब तक मैं भी यही समझता रहा कि ऐसे कलंकित कार्य में कोई हिन्दू संगठन हो ही नहीं सकता। किन्तु प्रज्ञा ठाकुर और सेना अफसर पुरोहित का नाम सामने आते ही मुझे लगा कि मेरा विश्वास भ्रम था और मैंने एक लेख द्वारा अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। किन्तु संघ परिवार ने बिना ठीक से जाँच किये ही उस कर्तव्यपरायण, ईमानदार अफसर हेमंत करकरे के विरुद्ध प्रचार शुरू करके प्रज्ञा पुरोहित के बचाव में खड़े हो गये। कुछ दिन पहले ही गोवा के मडगाँव में ब्लास्ट की योजना से ले जाए जा रहे बम ब्लास्ट की दुर्घटना में दो लोगों का किसी हिन्दू संगठन का सदस्य होना और साथ ही प्रज्ञा ठाकुर से सम्बन्ध जुड़ना एक दूसरे कलंक का स्पष्ट प्रमाण बन गया है। अब कौन-सा मुँह लेकर संघ परिवार यह कहेगा कि हिन्दू कभी आक्रमण की पहल नहीं करता। सबसे अधिक लज्जा की बात तो यह है कि ऐसा बम विरोधी पक्ष के विरुद्ध प्रयोग न होकर सामान्य नागरिकों की भीड़ में ही लगाया जाने वाला था, जिसका साफ-साफ अर्थ आतंकवाद ही माना जाता है।

कुछ हिन्दू संगठनों के इस कलंकित कार्य से हिन्दू समाज को तो ज्यादा नुकसान नहीं हुआ, क्योंकि हिन्दू समाज ने न तो कभी ऐसे कार्यों का समर्थन किया, न ऐसे संगठनों का समर्थन या सहयोग किया। किन्तु संघ परिवार की विश्वसनीयता पर तो प्रश्नचिह्न लगेगा ही। विशेषकर तब, जब इन्होंने प्रज्ञा पुरोहित प्रकरण में खुलकर और मडगाँव प्रकरण में दबे-छुपे सहानुभूति-समर्थन व्यक्त किया। पता नहीं ये लोग प्रतिक्रिया व्यक्त करने में इतनी जल्दबाजी क्यों करते हैं। यदि कोई घटना सम्पूर्ण हिन्दू समाज की विश्वसनीयता के साथ जुड़ी हो, तो सच्चाई सामने आने तक प्रतीक्षा करने में क्या हर्ज है? अब तो प्याज-जूता वाली कहावत चरितार्थ हो रही है कि विश्वसनीयता भी संकट में है और चुप रहना भी मजबूरी हो गई है। ऐसा ही एक दूसरा संकट सर्वोदय के समक्ष आ खड़ा हुआ। दुनिया के लोकतांत्रिक इतिहास में सर्वोदय ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो लोकस्वराज्य की पक्षधर रही है, अन्यथा अन्य सभी संगठन या तो राज्य-सशक्तिकरण में संलग्न हैं, या राज्य-निरपेक्ष संस्था के रूप में सेवा-कार्य में लगे हैं। संघ परिवार सत्ता-संघर्ष में लिप्त है, तो गायत्री परिवार, आर्य समाज आदि सेवा-कार्य तक सीमित हैं। सर्वोदय ने राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर सामाजिक नियंत्रण को प्राथमिकता घोषित किया। इन्होंने गांधी, विनोबा, जे.पी. का स्वयं को उत्तराधिकारी घोषित किया। गांधी जी के मरते ही सर्वोदय ने सेवा-कार्य को पहली और लोकस्वराज्य को औपचारिकता तक सीमित कर दिया, किन्तु लोकस्वराज्य को इन्होंने छोड़ा कभी नहीं। यदा-कदा लोकस्वराज्य की दिशा में कुछ न कुछ पहचान तो बनी ही रहती थी। गाँव तक को निर्णय की स्वतंत्रता की लड़ाई इनकी पहचान बन गई थी, भले ही अंदर-अंदर ये इस लड़ाई से बचते ही रहते थे। सन् चौहत्तर में जयप्रकाश जी ने लोकस्वराज्य संघर्ष को पहली प्राथमिकता घोषित करके प्रत्यक्ष होने के लिये मजबूर कर दिया। उस समय विनोबा जी को छोड़कर सारा सर्वोदय जयप्रकाश जी के साथ आ खड़ा हुआ। लाभ निर्णायक न होकर आंशिक ही रहा। सर्वोदय को घोर निराशा हुई। बंग जी फिर भी अकेले ही जयप्रकाश जी की दिशा में सोचते रहे और जब भी उन्होंने कुछ करना चाहा, तो किसी-न-किसी बहाने उन्हें रोक दिया गया।

अब ठाकुरदास जी बंग ने खुलकर लोक स्वराज्य अभियान का बीड़ा उठा लिया। सर्वोदय कार्यकर्ता बड़ी संख्या में बंग जी की टीम में जुड़ने लगे। सत्ता के समर्थकों को चिंता हुई। दो-तीन वर्षों तक तो ये लोग बंग जी को भरमाते रहे और जब बंग जी नहीं माने, तब दो हजार आठ में ये लोक स्वराज्य अभियान घोषित कर दिये, तब इन्हें सामने आकर बंग जी के विरुद्ध प्रस्ताव तैयार करना पड़ा। प्रश्न उठता है कि गांधी जी के सेवाग्राम आश्रम से लोक स्वराज्य की चर्चा पर रोक लगाने का निर्णय रामचन्द्र राही जी के इशारे पर करके सर्वोदय नेतृत्व ने क्या अपनी विश्वसनीयता खत्म नहीं कर दी? इन्होंने कैसे यह समझ लिया कि सर्वोदय कोई आर.एस.एस. सरीखा संगठन नहीं है, जिसका कार्यकर्ता आँख मूँदकर बिना विचारे ही नेतृत्व का निर्णय मान लेता है। सर्वोदय के तो हर कार्यकर्ता के ही ऐसे संस्कार बन जाते हैं कि वह सोच-समझकर ही किसी की बात मानता है, अन्यथा अकेले ही चल पड़ता है। यह सब समझते हुए भी सर्वोदय नेतृत्व ने इतनी बड़ी भूल कर दी कि अब सफाई देते नहीं बन रहा है। लगातार बंग जी के साथ सर्वोदय कार्यकर्ता लोक स्वराज्य अभियान के लिये जुड़ते जा रहे हैं। सर्वोदय नेतृत्व को सफाई देना कठिन हो रहा है। कोई यह कहने को तैयार नहीं है कि ऐसी पहल में उसकी मुख्य भूमिका रही। राही जी भी कोई बलि का बकरा खोज रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद भले ही सर्वोदय ने सक्रियता न दिखाई हो, किन्तु लोक स्वराज्य के विरुद्ध तो कभी आवाज नहीं उठाई थी। किन्तु स्वतंत्रता के साठ वर्षों बाद सर्वोदय के समक्ष ऐसी क्या मुसीबत थी कि उन्हें इस तरह गांधी जी की मूल अवधारणा के ही विरुद्ध सामने आना पड़ा। यह कोई सामान्य विषय तो था नहीं। सम्पूर्ण गांधी, विनोबा, जयप्रकाश की पहचान ही इस विचारधारा पर टिकी रही है। फिर उसकी आवाज बुलन्द करने का नेतृत्व कोई सामान्य व्यक्ति न करके बंग जी सरीखा व्यक्ति कर रहा है। तब आनन-फानन में बिना किसी औपचारिक

प्रस्ताव और चर्चा के ही बेचारे गंगा प्रसाद जी अग्रवाल को आगे करके तत्काल निर्णय कर लेने को इनकी कितनी समझदारी मानी जाए, यह सोचने का विषय है। अमरनाथ भाई भी छिपे रूप में लोक स्वराज्य के साथ हैं और वर्तमान अध्यक्ष भी, किन्तु कौन सी ताकत है जो मीटिंग में बैठते ही दोनों की भाषा बदल जाती है? आज सर्वोदय की जल्दबाजी में की गई क्रिया ने साठ वर्षों के ढके-छिपे षड्यंत्र को उजागर कर दिया। देश जान गया है कि स्वतंत्रता के बाद गांधी जी के ग्राम स्वराज्य को भ्रमित करने में सिर्फ राजनेताओं की ही भूमिका न होकर सर्वोदय नेतृत्व का भी मौन समर्थन रहा है। समाज को सिर्फ संघ परिवार से ही नहीं, सर्वोदय से भी प्रश्न करने का अधिकार है। नीचे से एक ऐसी ही विश्वसनीय जमात है भारत की न्यायपालिका, जिसने स्वयं को पूरी तरह ईमानदार कह-कह कर समाज में एक विश्वसनीय स्थान बना लिया। विधायिका तथा कार्यपालिका के भ्रष्टाचार के उनके अपने ही रिकॉर्ड तो आए दिन टूटते रहते हैं, किन्तु न्यायपालिका में होने वाले निचले स्तर के भ्रष्टाचार की चर्चा व्यक्तिगत चरित्र-पतन तक ही मानी जाती रही। कोई एकाध ऊपर का जज भी चर्चा में आया तो उसे ज्यादा तूल नहीं दिया गया। सबसे महत्वपूर्ण मामला तब आया जब सर्वोच्च न्यायालय के किसी मुख्य न्यायाधीश पर एक ही प्रकरण में कई सौ करोड़ के भ्रष्टाचार का आरोप लगा। उस समय न्यायपालिका से जुड़े अन्य लोगों ने भी अपने विशेषाधिकारों की दुहाई देकर प्रकरण को दबा दिया। भारतीय जनमानस को सच्चाई समझने का अवसर ही नहीं मिला। किन्तु अब अस्थाना प्रकरण न्यायपालिका के गले की फाँस बन गया है। न्यायपालिका के दो दर्जन से अधिक वर्तमान पदस्थ न्यायाधीश, जो सेशन कोर्ट से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक के जज हैं, उन पर आरोप लगा कि अस्थाना के पचीसों करोड़ के भ्रष्टाचार में ये सब जज भी शामिल थे। जाँच को ठंडा करके एक वर्ष से चर्चा से बाहर किया जा रहा था, किन्तु अस्थाना का जीवित रहना इन न्यायाधीशों के लिये लटकती तलवार तो था ही। उसके पास कई प्रमाण भी बताये जाते थे। एकाएक जेल में अस्थाना की संदेहास्पद मौत ने न्यायपालिका पर संदेह के बादल खड़े कर दिये। पाँच डॉक्टरों की टीम भी पोस्टमार्टम के बाद नहीं कह पाई कि अस्थाना की मौत संदेहास्पद नहीं है। स्वाभाविक ही है कि वह अकेला गवाह था, जो इतनी बड़ी-बड़ी न्यायिक हस्तियों को कटघरे में खड़ा कर रहा था। अन्य सामान्य अपराधियों के विरुद्ध न्यायालय की सक्रियता और अपने लोगों के विरुद्ध न्यायालय की डेढ़ वर्ष की ढिलाई ने वैसे ही न्यायपालिका की छवि धूमिल कर रखी थी। अब अस्थाना की संदेहास्पद मौत के बाद तो मामला पूरी तरह संदेहास्पद हो गया है।

इस लेख के माध्यम से हम किन्हीं व्यक्तियों की चुनरी पर लगे दागों की चर्चा नहीं कर रहे। हम तो संघ परिवार की हिन्दुत्व, सर्वोदय की लोक स्वराज्य और न्यायपालिका की ईमानदारी मात्र की ही चर्चा कर रहे हैं। वह चर्चा भी ऐसे मुद्दों पर केन्द्रित है, जो मुद्दे इन तीनों संस्थाओं की पहचान बने हुए हैं। अब भी समय है कि ये ऐसे धब्बे और आगे बढ़ने से रोक लें, अन्यथा ऐसा भी दिन आएगा कि इनके लिये ये दाग सार्वजनिक करना मजबूरी हो जायेगी।

ज्ञानतत्व 192 जनवरी 2010

प्रश्न- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रमुख मोहन जी भागवत ने आगरा की एक बैठक में कहा कि हिन्दू समाज को उसकी जाति व्यवस्था ने बहुत नुकसान पहुँचाया है। अब समय आ गया है कि जातीय व्यवस्था को समाप्त किया जाए। इसके लिये अन्तर्जातीय विवाह प्रोत्साहन एक अच्छा आधार है। संघ प्रमुख के इस सुझाव पर एक विद्वान लेखक दिलीप मंडल जी ने जनसत्ता, उन्तीस दिसम्बर में लेख लिखकर विचार दिया कि यदि यह संघ की हार्दिक इच्छा है तो यह विचार स्वागत योग्य है क्योंकि अम्बेडकर जी तो लम्बे समय से यह बात कह रहे थे। यदि संघ ने परिस्थिति-वश लाभ-हानि का आकलन करके यह संशोधन किया, तब भी कोई बात नहीं। किन्तु यदि संघ ने चालाकी से वर्तमान जातीय आरक्षण व्यवस्था को कमजोर करने के उद्देश्य से यह बात कही, तो हमें सतर्क हो जाना चाहिये। आप जातीय आरक्षण के भी विरुद्ध हैं और जातिवाद के भी। आप बताइये कि दिलीप मंडल जी की शंकाओं में कितना यथार्थ है।

उत्तर- जाति प्रथा की उत्पत्ति न समाज व्यवस्था से है, न धर्म व्यवस्था से। हमारी प्राचीन समाज व्यवस्था में मूल तत्व किसी ग्रंथ पर आधारित न होकर परम्पराओं से बनते रहे हैं। वर्ण और जाति एक नहीं हैं, जैसा कि लोग समझते हैं। मानव प्रकृति में गुण, कर्म और स्वभाव को मिलाकर जो भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं, उन्हें चार वर्णों में बाँटकर भिन्न-भिन्न वर्ग बना दिये गये। यह वर्ग निर्माण जन्मानुसार न होकर योग्यता अनुसार था। ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण ही होगा, यह आवश्यक नहीं था। प्रत्येक वर्ण तो गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ही बना, किन्तु जातियाँ सिर्फ कर्म अनुसार बनीं। अर्थात् समाज गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार चार वर्णों में विभाजित था और वर्ण कर्म अनुसार जातियों में। प्रत्येक वर्ण की आन्तरिक जातियाँ भिन्न-भिन्न थीं। ब्राह्मण वर्ण में तेली, नाई नहीं थे और न ही वैश्य में पुरोहित आदि। शूद्र और अछूत अलग-अलग थे। शूद्र वर्ण व्यवस्था के अन्दर थे और अछूत बाहर होने से अवर्ण माने जाते थे। बाद में भ्रमवश अवर्ण और शूद्र का भेद मिट गया।

समाज व्यवस्था का कोई संगठन न होने से मान्यताएँ ही व्यवस्था का स्वरूप ग्रहण करती रहीं। अनेक स्मृतियाँ बनीं, किन्तु विधिवत किसी स्मृति को मान्य घोषित नहीं किया गया। जिसे ज्यादा लोगों ने स्वीकार कर लिया, वही मान्य हो गई। विवाह और खान-पान या रीति-रिवाज

प्रत्येक वर्ण के अन्तर्गत बनी जातियों के अपने-अपने हों, क्योंकि जाति के आधार पर व्यवसाय निश्चित होने से जाति में विवाह सुविधाजनक होता था। कल्पना करिये कि तेली परिवार में बढ़ई परिवार की अपेक्षा तेली व्यवसाय से जुड़ी लड़की ही आए तो क्या अधिक सुविधाजनक नहीं होगा? निश्चित रूप से सुविधा होगी। इसी सुविधा के आधार पर जाति व्यवस्था भी स्थायी होती गई और जाति व्यवस्था के आधार पर वर्ण व्यवस्था भी। यद्यपि जाति व्यवस्था जन्म आधारित हो जाने से योग्यता पिछड़ती गई। इसका प्रभाव शूद्रों पर भी हुआ ही, किन्तु मुख्य अत्याचार अवर्णों के साथ हुआ क्योंकि वे श्रमजीवी के साथ-साथ अछूत भी बना दिये गये थे, जबकि शूद्र अछूत नहीं था। इस जन्म आधारित व्यवस्था को तोड़कर कर्म आधारित करना ही एक मात्र समाधान था। इस अनुसार सभी शिक्षक, न्यायाधीश, शोधकर्ता, वैज्ञानिक, धार्मिक विद्वान आदि पहले वर्ग में, राजनीतिज्ञ दूसरे वर्ग में, व्यवसायी तीसरे वर्ग में, श्रमजीवी चौथे वर्ग में तथा अपराधी अवर्ण घोषित हो सकते थे। कोई और संशोधित व्यवस्था संभव थी। स्वतंत्रता के पूर्व जाति और वर्ण व्यवस्था में विकृति चरम पर थी, किन्तु गुलामी से मुक्ति के संघर्ष को प्राथमिकता दी गई और इस विकृति निवारण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। फिर भी स्वामी दयानन्द, अनेक सिख धर्मगुरु या महात्मा गांधी आदि की नजरों में जातिवाद को विकृति मानकर परिवर्तन की इच्छा शक्ति थी। किन्तु अम्बेडकर जी ने इस सामाजिक विकृति का समाधान करने की अपेक्षा इसका राजनीतिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया। वे जातिवादी भेदभाव की समाप्ति की अपेक्षा उसे ऐसा स्थायित्व देना चाहते थे जिसके आधार पर समाज शोषक और शोषित के रूप में दो वर्गों में बँट जावें और यह वर्ग विभेद भी कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर जीवित रहे। यह वर्ग भेद आज तक अम्बेडकर जी की पूँजी बना हुआ है। कर्म के आधार पर जाति व्यवस्था कमजोर होकर जन्म के आधार पर फिर से मजबूत हो रही है। यदि अधिवक्ताओं की अलग जाति बने और डॉक्टरों की अलग, इसी तरह नेताओं की अलग और मजदूरों की अलग, धीरे-धीरे पुरानी जाति व्यवस्था कमजोर होती जायेगी और नई जाति व्यवस्था मजबूत होगी। किन्तु इस नई व्यवस्था के बनने में अम्बेडकर जी का संविधान सबसे बड़ी बाधा है क्योंकि इस व्यवस्था से जन्म के आधार पर जाति व्यवस्था कमजोर होगी। इससे वर्ग विद्वेष भी घटेगा, जो अन्ततः अम्बेडकर जी के नाम का लाभ उठाने वालों को कमजोर करेगा। जाति व्यवस्था के टूटने में यह सबसे बड़ा पेच है और यही कारण है कि दिलीप मंडल जी ने भी संघ प्रमुख भागवत जी की अन्तर्जातीय विवाह प्रोत्साहन योजना के प्रति शंका प्रकट की है। वैसे जाति प्रथा टूटेगी ही। सवर्णों में कन्या भ्रूण हत्या ने लिंगानुपात गड़बड़ा कर लड़कियों का अभाव बना दिया है। सवर्णों को अन्य वर्णों के साथ विवाह सम्बन्ध बनाना उनकी मजबूरी भी है क्योंकि एकाएक लड़कियाँ तैयार करना तो संभव नहीं है। वैसे हर राजनीतिक नेता कन्या भ्रूण हत्या को रोकने का भरसक प्रयत्न कर रहा है क्योंकि उसे लड़कियों का अभाव स्पष्ट दिख रहा है। उसे न न्याय-अन्याय से कुछ लेना-देना है, न ही सामाजिक विकृति से। उसे चिन्ता है महिलाओं की घटती संख्या की। इसलिए भागवत जी का सुझाव बहुत समयानुकूल भी है और उचित भी। मंडल जी को उक्त सुझाव में शंका की आवश्यकता नहीं। यदि कोई दवा प्रतिद्वन्द्वी किसी दवा फैक्ट्री को असफल करने के लिये बीमारों को स्वस्थ करना शुरू कर दे तो इसमें शंका क्यों? यदि संघ आरक्षण समाप्ति के उद्देश्य से भी जाति प्रथा का विरोध करे और मंडल जी उक्त विरोध में शंका व्यक्त करें, तो भागवत जी के कथन में शंका कम और मंडल जी की शंका पर शंका अधिक होती है। मैं तो इस मत का हूँ कि जाति प्रथा के समाप्त होने में आरक्षण ही सबसे बड़ी बाधा है। और यदि शंका ही व्यक्त करनी हो तो भागवत जी या मंडल जी के कथनों पर शंका व्यक्त न करके अम्बेडकर जी पर ही शंका क्यों न व्यक्त कर दी जावे, जिन्होंने आरक्षण को आगे करके जातीय टकराव को फिर से मजबूत कर दिया।

उत्तर आपने मेरे विचारों की समीक्षा की है इससे मुझे खुशी हुई । यह सच है कि मैंने रामानुजगंज की सामाजिक व्यवस्था में मुसलमानो पर भी कुछ प्रतिबंध लगाए थे और संघ परिवार पर भी जिसका वहाँ की पूरी जनता ने समर्थन किया था। मेरे नेतृत्व में ही तीन वर्षों के लिए संघ की शाखाएँ भी बंद की गयी और सामाजिक नियम तोड़ने के कारण तीन मुस्लिम परिवार हिन्दू भी बने। यह बात भी सच है की मेरे और संघ के बीच हिन्दुत्व की परिभाषा को लेकर गंभीर मतभेद थे। मैं शराफ़त को ही हिन्दुत्व समझता था और संघ हिन्दुत्व को ही शराफत। मैं नरम हिन्दुत्व का पक्षधर था और संघ गरम हिन्दुत्व का। मैं हिन्दुत्व की परिभाषा गांधी की ठीक समझता था और संघ सावरकर की। यही एक प्रमुख कारण था की संघ की अनेक अच्छाइयों के बाद भी मेरे विचार कुछ प्रमुख मामलों में संघ से अलग थे। आपने जो भी लिखा है वह ठीक लिखा है और मैं आज भी कहता हूँ की मैं उस समय सही था। मैं हमेशा नरेंद्र मोदी का पक्षधर रहा और जब नरेंद्र मोदी प्रधान मंत्री बने तब धीरे धीरे संघ ने गांधी की नीतियो पर विचार करना शुरू किया। उसके पहले तो संघ आँख बंद करके सावरकरवादियों के प्रभाव में रहता था। 2017 आते आते संघ को गांधी विचारों का महत्व अच्छी तरह समझ में आ गया। संघ ने प्रवीण तोगड़िया तथा कुछ अन्य कट्टरपंथियों को बाहर कर दिया और धीरे धीरे हम लोगों की भाषा को स्वीकार कर लिया। अब मैं अच्छी तरह समझता हूँ की संघ और नरेंद्र मोदी मिलकर जिस दिशा में चल रहे हैं उससे हम लोगों के बीच में कोई मतभेद नहीं है।

यही कारण है की मैं पीछले कई वर्षों से लगातार संघ और नरेंद्र मोदी का समर्थन कर रहा हूँ। मेरे विचारों में न उस समय कोई गलती थी न अब है। आप यदि और भी कोई प्रश्न करेंगे तो मैं सभी प्रश्नो के उत्तर देने को तैयार हूँ।

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

ग्राम पंचायत, जनशक्ति और व्यवस्था परिवर्तन की दिशा

प्रस्तुत चर्चा इस विचार पर केंद्रित है कि देश की समस्याओं के समाधान के लिए केवल चिंतन ही नहीं, बल्कि सक्रिय क्रिया की आवश्यकता है। बजरंग लाल जी के अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शासन और समाज के बीच बढ़ती दूरी ही समस्याओं की जड़ है। इस दूरी को कम करने तथा समाज को अधिक सक्षम बनाने के लिए लोक स्वराज्य, अपराध मुक्ति, आर्थिक असमानता में कमी, श्रम मूल्य वृद्धि और समान नागरिक संहिता जैसी पाँच संवैधानिक प्राथमिकताओं को स्थापित करना आवश्यक माना गया है। इस व्यवस्था परिवर्तन के लिए श्लोक स्वराज मंचश् और श्ज्ञान यज्ञ मंडलश् को दो पूरक संस्थाओं के रूप में विकसित किया गया है। लोक स्वराज मंच का उद्देश्य राजनीतिक हस्तक्षेप को सीमित कर समाज की भूमिका को मजबूत बनाना है, जबकि ज्ञान यज्ञ मंडल समाज में वैचारिक जागृति, चिंतन और संवाद को बढ़ावा देता है। श्ज्ञान तत्वश् पत्रिका को इसी वैचारिक अभियान का प्रमुख माध्यम माना गया है, जिसका उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं बल्कि समाज में विचार-मंथन और सहभागिता को बढ़ाना है। चर्चा में यह भी कहा गया कि पिछले 22 वर्षों में तकनीक, संचार और संसाधनों का विस्तार हुआ है, लेकिन इसके समानांतर निस्वार्थ सामाजिक कार्यों की भावना कमजोर हुई है और सत्ता का केंद्रीकरण बढ़ा है। विशेष रूप से ग्राम पंचायतों और ग्राम सभाओं की स्थिति पर चिंता व्यक्त की गई। वक्ताओं के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था को संविधान में महत्वपूर्ण स्थान मिलने के बावजूद ग्राम पंचायतों के पास पर्याप्त विधायी और निर्णयकारी अधिकार नहीं हैं। परिणामस्वरूप वे वास्तविक स्वशासन की इकाई बनने के बजाय प्रशासनिक ढांचे की सीमित इकाई बनकर रह गई हैं। रामानुजगंज नगर पंचायत का उदाहरण इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखित किया गया। बताया गया कि वहाँ स्थानीय नागरिकों और जनप्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से पेयजल योजना के लिए आवंटित लगभग डेढ़ करोड़ रुपये की राशि को सुरक्षा व्यवस्था की आवश्यकता को देखते हुए पुलिस विभाग को हस्तांतरित करने का निर्णय लिया था। इस उदाहरण को इस बात के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया गया कि जब ग्राम पंचायत, स्थानीय निकाय और जनशक्ति मिलकर निर्णय लेते हैं, तो वे अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप प्रभावी और सामूहिक फैसले लेने में सक्षम होते हैं।

निष्कर्ष यह रहा कि यदि ग्राम पंचायतों और ग्राम सभाओं को वास्तविक अधिकार, संसाधन और निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिले, तो वे लोक स्वराज्य की आधारशिला बन सकती हैं और शासन तथा समाज के बीच बढ़ती दूरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

संस्थागत समाचार

अयोध्या में 25-26 जुलाई को आयोजित होगा ज्ञान केंद्र प्रांतीय अधिवेशन

लोकव्यवस्था जागरण अभियान के अंतर्गत पूर्वी एवं मध्य उत्तर प्रदेश के 35 जिलों के कार्यकर्ता होंगे सहभागी

रामानुजगंज/अयोध्या। मां संस्थान द्वारा संचालित "लोकव्यवस्था जागरण अभियान" के अंतर्गत

आगामी 25-26 जुलाई 2026 को अयोध्या धाम में दो दिवसीय ज्ञान केंद्र प्रांतीय अधिवेशन आयोजित किया जाएगा। अधिवेशन का आयोजन विवेक सृष्टि, रामघाट, रामसेवकपुरम, अयोध्या धाम में किया जाएगा। इस अधिवेशन में पूर्वी एवं मध्य उत्तर प्रदेश के 35 जिलों के ज्ञान केंद्र संचालक, सहयोगी कार्यकर्ता तथा देश के विभिन्न राज्यों से जुड़े ज्ञान केंद्रों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। मां संस्थान के अनुसार यह अधिवेशन केवल एक संगठनात्मक कार्यक्रम नहीं, बल्कि "समाज की स्वशासी शक्ति के जागरण और राज्य-निर्भरता से मुक्ति" के उद्देश्य से चलाए जा रहे व्यापक लोकव्यवस्था जागरण अभियान का महत्वपूर्ण चरण है। अधिवेशन का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान केंद्रों के विस्तार, कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण, संस्थागत समन्वय तथा लोकव्यवस्था आधारित सामाजिक पुनर्निर्माण की दिशा में कार्ययोजना तैयार करना है। ज्ञातव्य है कि वर्ष 2024 में नोएडा में आयोजित मां संस्थान के वैचारिक शिविर में यह निर्णय लिया गया था कि व्यवस्था परिवर्तन के तीनों आयामों पर योजनाबद्ध कार्य करने के लिए देशभर में ज्ञान केंद्रों की स्थापना की जाएगी। इन ज्ञान केंद्रों को "संवाद, समन्वय एवं परिवर्तन के तीर्थ" के रूप में विकसित करने की परिकल्पना की गई है। पिछले दो वर्षों के दौरान ओडिशा, झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश सहित विभिन्न राज्यों में लगभग 200 ज्ञान केंद्र स्थापित एवं संचालित किए जा चुके हैं। दक्षिण भारत में इस अभियान का संचालन डॉ. एम. एच. पाटील के नेतृत्व में किया जा रहा है। अधिवेशन से पूर्व अयोध्या को केंद्र मानकर लगभग 300 किलोमीटर के दायरे में आने वाले उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में व्यापक संपर्क अभियान चलाया जा रहा है। अभियान का लक्ष्य प्रदेश की प्रत्येक तहसील में कम से कम एक ज्ञान केंद्र स्थापित करना तथा स्थानीय स्तर पर अध्ययन, संवाद, प्रशिक्षण एवं सामाजिक सहभागिता की स्थायी संरचना विकसित करना है।

कार्यक्रम की रूपरेखा

अधिवेशन का उद्घाटन 25 जुलाई को प्रातः 9:30 बजे ग्लोब पर माल्यार्पण एवं ध्वजारोहण के साथ होगा। इसके पश्चात स्वागत, परिचय तथा अधिवेशन की भूमिका प्रस्तुत की जाएगी। उसी दिन अपराह्न 3:00 बजे से "व्यवस्था परिवर्तन क्यों?" विषय पर वैचारिक गोष्ठी आयोजित होगी, जिसमें वर्तमान व्यवस्था की चुनौतियों, परिवर्तन की आवश्यकता, ज्ञान केंद्रों की भूमिका तथा संवाद, समन्वय एवं परिवर्तन के मॉडल पर चर्चा की जाएगी। 26 जुलाई को प्रातः 9:30 बजे से संस्थागत विकास एवं कार्ययोजना सत्र आयोजित किया जाएगा। इसमें ज्ञान केंद्रों के संस्थागत ढांचे, योजनाओं को धरातल पर उतारने के उपाय, प्रत्यक्ष उदाहरणों, अनुभवों तथा संस्था के अन्य सहयोगी कार्यक्रमों पर चर्चा होगी। दोपहर बाद 3:00 बजे से समीक्षा एवं समापन गोष्ठी आयोजित की जाएगी, जिसमें अधिवेशन की समीक्षा, आगामी कार्यक्रमों की योजना, उत्तरदायित्व निर्धारण तथा अतिथियों की विदाई का कार्यक्रम होगा। संस्था ने बताया है कि अधिवेशन में भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों के लिए आवास एवं भोजन की व्यवस्था संस्थान द्वारा की जाएगी। कार्यक्रम से संबंधित सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए एक विशेष व्हाट्सएप समूह भी बनाया गया है। इस अभियान का संचालन संजय तिवारी, अनोखे लाल, संतोष मकड़िया, ज्ञानेंद्र आर्य, नरेंद्र सिंह, बहादुर सिंह तथा ज्ञान यज्ञ परिवार रामानुजगंज के अध्यक्ष मोहन गुप्ता के नेतृत्व में किया जा रहा है। संस्था ने विश्वास व्यक्त किया है कि यह अधिवेशन ज्ञान केंद्र आंदोलन को नई दिशा प्रदान करेगा तथा लोकव्यवस्था आधारित सामाजिक पुनर्निर्माण के अभियान को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त होगा।